राजस्थान के वीर

विषय सूची

मेरी कामना

वीर भूमि राजस्थान का गौरवमय इतिहास केवल राजस्थ और भारत ही नहीं परन्तु संसार के वीरों तथा इतिहासवक्ताओं लिए प्रेरणाप्रद एवं उत्कृष्ठ रहा है। राजस्थान की भूमि पर जन्म लेने वाले प्रत्येक नारी व पुरुष के लिए इसका महत्व और भी अधिक अनुकरणीय होता है। आज के इस भौतिक युग में जबकि मनु शक्ति के साधनों का दास बन गया है तथा अपने बल और शौर्य क भूल बैठा है उस समय यह वीरों की गाथाएं यदि उन बालकों क जिनके स्कन्धों पर देश का जूड़ा रक्खा जाने वाला है यदि अपने इ वीरों से थोड़ी सी भी प्रेरणा प्राप्त कर बल, शौर्य, उत्कृष्ट देश प्रेम तथा मातृभूमि के प्रति सद्कामनाओं की निर्झरणी प्रस्फुटित हों सक तो मैं इस लघु प्रयास के लिए आभारी रहूंगी।

वीर भूमि राजस्थान ने अनेकों वीरों को जन्म दिया औ उन्होंने संसार के इतिहास में गौरवमय स्थान बनाकर अपनी जन्म भूमि के प्रति अनुराग का जो अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया उनकी जानकारी प्राप्त करना इस देश के प्रत्येक बालक का प्रथ कर्तव्य हो जाता हैं। एतिहासिक गाथाएं विस्तृत तथा विशाल रूप तो अवश्य उपलब्ध होती है परन्तु जो गाथाएं मैंने चुनी है उनक लघु तथा रोचक बनाने का पूर्ण प्रयास किया है यदि बालकों ने इ अंगीकार किया तो अवश्य ही वीर भावना तथा देश-प्रेम की प्रज्वलित हो सकेगी।

१०-४-६७

सी-४७, तिलकनगर
जयपुर

विजयलक्ष्मी चौरड़िया

१–राणा सांगा

"मैं राजा नहीं,अपितु अपनी मातृभूमि का सेवक हूं। प्रत्येक देशवासी का पुण्य कर्तव्य है कि वह मातृभूमि को मुक्त करवाने के लिए अपना सर्वस्व बलिदान करवाने हेतु सर्वदा प्रस्तुत रहे।"

इस प्रकार आसपास के सभी राजपूत राजाओं तथा प्रत्येक व्यक्ति को देश में व्याप्त मुसलमानों को बाहर निकालने व एकता के सुत्र में बंधने का राणा सांगा ने मौन संकेत किया।

वीर सांगा चित्तौड़ के राणा रायमल के वीर पुत्र थे। ये तीन भाई थे। राणा सांगा, पृथ्वीराज, जयमल राणा रायमल की वृद्धावस्था में ही राज गद्दी प्राप्त करने के लियेतीनों में संघर्ष हुआ, क्योंकि तीनों ही राजगद्दी पर बैठना चाहते थे। इनमें से पृथ्वीराज बहुत क्रोधी तथा वीर था, उसने स्पष्ट रूप से कह दिया, "चाहे जो हो, गद्दी पर तो मैं ही बैठूंगा। इसके लिए चाहे कितना ही मूल्य क्यों नहीं देना पड़े–हर कीमत पर तैयार रहूंगा"। तीनों भाइयों के आपसी झगड़े को शांतिपूर्ण ढ़ंग से निपटाने के लिए तथा राज्य में शांति, एकता व प्रेम का साम्राज्य स्थापित करने के लिए इनके चाचा सूरजमल ने एक युक्ति सामने रखी। उन्होंने कहा कि" सामने पहाड़ियों पर देवी का मन्दिर है तथा उसमें एक तपस्विनी व नेक पुजारिन है। इस विषय में वह हमें उचित परामर्श दे सकेगी। अतः मेवाड़ की गद्दी का वास्तविक उत्तराधिकारी कौन है? हमें चल कर पूछना चाहिए।"

चाचा जी की इस युक्ति पर सभी तैयार हुए तथा निश्चित स्थान पर अपने लक्ष्य की पूर्ति हेतु पहुंचे। सभी ने मन्दिर में अपना-अपना आसन ग्रहण किया। चाचा सूरजमल ने पुजारिन से पूछा "देवी! ये तीनों भाई चित्तौड़ की राज गद्दी पर बैठना चाहते हैं। आप बताइये कि इनमें से मेवाड़ की गद्दी का वास्तविक अधिकारी कौन है?" पुजारिन ने पूर्ण चिन्तन के बाद कहा "वत्स! इनमें से वही राजा होगा जो यहां पर बिछे हुए आसनों में सिंह आसन पर बैठा हुआ है"। तीनों ने एक दूसरे की ओर देखा-पृथ्वी राज और जयमल चटाइयों पर बैठे थे और सांगा, सिंह चर्म के आसन पर। पृथ्वीराज स्वभाव से बहुत क्रोधी थे अतः वे तलवार लेकर राणा सांगा पर टूट पड़े। राणा सांगा भी वीरता में अपना सानी नहीं रखते थे। परन्तु वे दूर-दर्शी थे तथा भाइयों को प्रेम से समझाना अधिक श्रेष्ठ समझते थे। अतः उन्होंने दूर हटकर अपनी रक्षा की और वहां से तेजी के साथ बाहर चले गये।

जब यह समाचार इनके पिता रायमल को मिले तो वे बहुत नाराज व दुःखी हुए और उन्होंने तत्काल पथ्वीराज को मेवाड़ से बाहर चले जाने की आज्ञा दे दी। पृथ्वीराज क्रोधी के साथ-साथ बहादुर भी कम न था। मेवाड़ से बाहर निकल कर पृथ्यीराज ने भीलों को अपने साथ मिलाया तथा एक संगठित सेना तैयार की तथा गौदावर पर अपना अधिकार किया और मालिक बन बैठा।

उधर जयमल, राव शिवरतन की लड़की तारावाई के प्रेम पाश में फंस कर राव साहब द्वारा ही मारा गया। तारा बाई बहुत बहादुर व सुन्दर लड़की थी। वह चाहती थी कि मैं उसके साथ शादी करूंगी जो मेरे बाप के गये हुए राज्य को वापस दिला देगा और मेरे जन्म स्थान से पठान शासकों को हटा देगा। जयमल ने तारावाई को सन्तुष्ट करने के लिए पूर्ण शक्ति लगाई—परन्तु सफल न हो सका। अतः केम्प में धोखे से मारा गया।

इस खबर ने पृथ्वीराज के दिल में आग लगा दी तथा भाई का वदला लेने के लिए उसने टोंक पर चढ़ाई कर दी और वहां से पठान भगा दिये गये। तारावाई ने प्रसन्न हो कर तथा पृथ्वीराज की वीरता पर रीझ कर उससे विवाह भी कर लिया। राजा रायमल को सांगा का पता न होने से पुनः पृथ्वीराज को मेवाड़ वुला लिया और उसे मेवाड़ का उत्तराधिकारी घोषित कर दिया, किन्तु पृथ्वीराज के भाग्य में चितौड़ की गद्दी न थी। उसको वहनोई द्वारा विष खिला कर मरवा दिया गया तथा पतिव्रता स्त्री तारावाई सती हो गई।

सांगा को मेवाड़ छोड़ने पर वड़ी मुसीवतों का सामना करना पड़ा। सत्य भी है—कांटों के मार्ग पर चलने से ही सफलता मिलती है। दु:खों की दोपहरी में तपने पर ही सुखपूर्ण रात्रि के दर्शन होते हैं। इन दिनों में उसे कई छोटे २ कार्य कर अपना जीवन निर्वाह करना पड़ा। अन्त में पुरुषार्थ ने भाग्य को सवल वनाया। फलस्वरूप उसने एक अच्छी सेना का संगठन किया तथा किसी राज्य पर आक्रमण करने की प्रतीक्षा में था कि उसे समाचार मिला कि उसके दोनों भाई मारे गये और पिता रायमल भी चल वसे हैं तो वह सीधे चित्तौड़ आया और मेवाड़ का राजा वन गया।

राजगद्दी पर वैठते ही सांगा ने कुशल शासक का परिचय दिया। उसने सवसे पहले घर की आन्तरिक स्थिति को सुदृढ़ वनाया, जो गृह कलह के कारण अस्त-व्यस्त व छिन्न-भिन्न हो गई थी। प्रजा की स्थिति व स्तर में सुधार लाने के लिए उसने भरसक प्रयत्न किया। "परिश्रम सफलता की कुंजी है"—"जिन खोजा तिन पाइयां वाले आदर्शों के आधार पर राणा सांगा का राज्य पूर्णरूप से समृद्धिशाली व सुदृढ़ हो गया। तत्पश्चात राणा सांगा ने भारत से मुस्लिम शासन को समाप्त करने की तथा देश-सेवा में रत रहने की दृढ़ प्रतिज्ञा की। इस हेतु एक विशाल सेना का संगठन किया सवसे पहले उसने मेवाड़ के पड़ौसी मालवा, गुजरात, अजमेर और वयाना के मुस्लिम

शासकों को हमेशा के लिए समाप्त करने की कमर बांधली तथा एक के बाद एक पर चढ़ाई करके उसने उन तमाम मुस्लिम शासकों को समाप्त कर दिया। इस प्रकार राणा साँगा की वीरता व अदम्य साहस से उसके राज्य में बयाना से लेकर अजमेर और मालवा तक के कुल प्रांत सम्मिलित हो गये। यहां तक कि उसका राज्य दिल्ली और गुड़गांव तक फैल गया।

उन दिनों दिल्लीं में लोदी खानदान के बादशाह इब्राहीम लोदी मुसलमान शासक था। वह राणा सांगा की इन विजयों व वीरतापूर्ण कार्यों से घबरा गया और वह स्वयं घटोल के नवाब की सहायता के लिये रण-क्षेत्र में पहुंच गया। राणा सांगा-जो भारत के हिन्दु राजाओं के मुकुट के समान था विशाल सेना लेकर रण-भूमि में आ पहुंचा। घमासान युद्ध हुआ। इब्राहीम लोदी पराजित हुआ और वापस दिल्ली लौटकर चला गया।

राणा की विजय से कीर्ति रूपी सुगंध सर्वत्र व्याप्त हो गई। भारत में प्रसन्नता की लहर फैल गई। सभी राजाओं ने राणा सांगा के पास शुभ संदेश, बधाइयां व अपनी सेवायें अर्पित कीं।

मातृभूमि के महान पुजारी, देश के संरक्षक चाहते थे कि चित्तौड़ को भारत की राजधानी बनाई जाय। सांगा इसी उद्देश्य से चित्तौड़ को दृढ़ करने में पूरी शक्ति से लगे हुए थे। उनके सामने एक महान गौरवपूर्ण लक्ष्य था, वह यह कि दिल्ली से मुस्लिम शासन को समाप्त कर मेवाड़ में मिलाया जाय। अतः उन्होंने सैनिक संगठन व तैयारियां जोरों से प्रारम्भ करदीं।

उधर मुगलों का सरदार बाबर छिपे रूप से सैनिक संगठन में लगा हुआ था तथा शक्ति के साथ भारत में घुस आया और लाहौर पर अपना अधिकार भी कर लिया।

लाहौर ले लेने के वाद वावर विजय के अनेक स्वप्न देखने लगा। वह पानीपत की ओर आगे वढ़ा। इस युद्ध में वावर व इब्राहीम लोदी के मध्य मुकावला हुआ। इब्राहीम इस युद्ध में मारा गया-वावर का दिल्ली पर कब्जा हुआ।

राणा सांगा ने चिन्तन किया व सभी राजाओं से परामर्श किया तथा आगरे में वावर की सेना को हराने के लिए विशाल सेना का संगठन किया।

आगरे के पास कन्हवा नामक स्थान पर दोनों सेनाओं का भीषण मुकावला हुआ। सभी राजाओं ने राणा का साथ दिया। प्रथम वावर की सेना घवरा गई तथा सरदारों के हाथ पांव ढीले होगए। वावर ने अपनी सेना को विशेष प्रलोभन दिये तथा इस्लाम के नाम पर उत्साहित किया। वावर के पास एक भीषण तोपखाना था और उस समय तक भारत में तोप न थी। इसके साथ ही साथ कुछ राजाओं ने वावर को मोर्चें वन्दी सम्वन्धी भेद भी वता दिये। इससे वावर को सफलता मिली और वह विजयी हुआ।

राणा सांगा इस युद्ध में पराजित अवश्य हुआ परन्तु उसका साहस भंग नहीं हुआ और उसने समस्त राजाओं व नागरिकों को उत्साहित किया। उसने प्रेरणास्पद वाक्य में कहा "मैं मुगलों को भारत से वाहर निकालकर ही सुख की नींद सोऊंगा।"

"मनुष्य क्या सोचता है और ईश्वर क्या करता है"—विधि के कार्यों की विडम्वना अद्भुत है। राणा सांगा की उक्त प्रतिज्ञा पूर्ण होने के पूर्व ही अचानक रोगग्रस्त हो गया और इस मृत्युलोक से चल वसा।

राणा सांगा का स्थान हमारे राजस्थान के इतिहास में वहुत ऊंचा एवं गौरवमय है। उसने अपना सर्वस्व मातृभूमि की स्वतन्त्रता व सेवा में अर्पित कर दिया था।

राणा सांगा एक वहादुर, साहसी व निर्भीक योद्धा था। उसकी भी एक टांग, एक हाथ व एक आंख युद्धस्थल में ही काम आई थी। उसके शरीर पर तलवार और वर्छे के ८० घाव थे। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि वह कितना वहादुर था और वह अपनी मातृ-भूमि से विदेशियों को निकालने के लिए अन्तिम श्वास तक लड़ता रहा।

प्रिय विद्यार्थियों ! हमारा कर्त्तव्य केवल कहानी पढ़कर ही पूर्ण नहीं हो जाता है, हमें उनके गुणों को अपने जीवन में उतारना है तथा मातृभूमि के रक्षा व सेवा के लिये सर्वदा तत्पर रहना है।

---

२ राणा हम्मीर

रणथम्भोर किले का सफल संरक्षक, राजपूत जाति का रत्न-जटित मुकुट तथा दृढ़ प्रतिज्ञ राणा हम्मीर को राजस्थान में कौन नहीं जानता ? आपके प्रति सभी के हृदय में अगाध श्रद्धा व प्रेम है। आपके लिये आज भी प्रसिद्ध है–

"त्रिया, तेल, हम्मीर हठ चढ़े न दूजी बार"

राणा ने भारतीय परम्पराओं को अपूर्व वलिदान के साथ जीवित रखा। शरण में आये हुए दुश्मन को अपना अंग समझकर उसकी रक्षा में अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया।

इस समय दिल्ली पर अलाउद्दीन वादशाह शासन कर रहा था। उसके महलों में रंगरेलियों की वहारें थी, पायल की झंकारों से वातावरण रंगीन था-ऐसी स्थिति में सुन्दरता को महत्व दिया जा रहा था, वीरता का अपमान हो रहा था। वादशाह अपनी शक्ति के मद में चूर था, होश में होकर भी बेहोश था। उन्मत्त वादशाह ने अपना स्वार्थ सिद्ध न होने पर क्रोध में वुद्धि को जलाकर अपने एक वीर सरदार महिमाशाह को देश से निकाल दिया, हमेशा के लिये। इसके साथ ही साथ घोषणा कर दी गई कि जो भी राजा इस व्यक्ति को शरण देगा वह दिल्ली के शासन का घोर दुश्मन समझा जावेगा।

वीर महिमा वादशाह का नोकर अवश्य था परन्तु अपनी प्रतिष्ठा व स्वाभिमान वेचकर नहीं। उसने भी मन में दृढ़ निश्चय

कर लिया कि वह वापस बादशाह के पास जाकर क्षमा याचना नहीं करेगा-करता भी क्योंकर ? वह न्याय के पथ पर था, अन्याय से उसे घृणा थी। परन्तु यह भी निश्चय था कि बादशाह से दुश्मनी रखना सिर पर कांटों के ताज से कम न था। सच है--पुरुषार्थी व्यक्ति ऐसी आपदाओं से घबराते नहीं वरन् डटकर लोहा लेते हैं।

वह निराश्रित सरदार घूमता जंगलों में भटकता, भूख प्यास का मुकाबला करता, ऐसे स्थान पर पहुचा जहां उसने एक घायल शेर को देखा। उसके हृदय में प्रसन्नता की लहर दौड़ी। सोचा आज तो पेटभर खाने को मिलेगा क्योंकि वह करीब चार रोज से भूखा था। बहादुर सरदार ने शिकार को उठाया और आगे बढ़ा दो कदम बढ़ा भी न था कि आवाज आई 'शिकार को रख दो तथा दो-दो हाथ के लिये तैयार हो जाओ।" सामने ही दो राजपूत युवक सरदार म्यान से तलवार निकाले हुये खड़े थें। वीर महिमा ने उत्तर दिया "बहादुरों ! मैं चार रोज से भूखा हूं, पहले मुझे पेटभर खाने दो, उसके बाद मुकाबला किया जावेगा। राजपूत सरदारों ने आपस में काना-फूसी की और एक युवक सरदार जो हामीर था ने आगे आकर पूछा "तुम चार रोज से भूखे क्यों हो ?" वीर महिमा ने सारी घटना व स्थिति का परिचय दिया। राणा हम्मीर का हृदय द्रवित हो उठा। उसने वीर पठान को विश्वास दिलाया तथा आपत्ति में सहायता करने के लिए तैय्यार हुआ।

वीर पठान नहीं चाहता था क राणा उसके लिए, एक मुसलमान के लिए, अनावश्यक दिल्लीपति को अपना दुश्मन बनाये। परन्तु राणा दृढ़ प्रतिज्ञ व आश्रयदाता था। उसने इन शब्दों से पठान को राजपूत जाति के गौरव से अवगत कराया तथा इंसानियत का पाठ भी सिखाया "मेरे लिए इतना ही पर्याप्त है कि तुम वीर पुरुष हो, आपत्ति में हो और तुम्हें शरण देना विपत्ति भी है। तुम्हें हृदय से लगाना फूलों का हार पहनाना नहीं, कांटों पर चलना है। हम लोग

तो विपत्तियों के साथी हैं, उन्हें खोजते फिरते हैं। कई दिनों से तलवारें रक्त की प्यासी भी हैं . देखता हूं कि कौन रणथम्भौर की चट्टानों से अपना सिर टकराने आता है।"

राजा वीर पठान को अपने साथ ले महलों की ओर रवाना हुआ। वातावरण "धन्य-धन्य" के शब्दों से गूंज उठा, पुष्प भी मुस्कराकर धरती के आंचल में सोगये, शीतल मलय चलने लगा। दीवारों के कान होते हैं, हवा के पर होते हैं। धीरे धीरे यह संदेश अलाउद्दीन खिलजी के कानों तक पहुंच गया। वह आग ववूला हो उठा। उसने भी गरजकर कहा, "मैं ईंट से ईंट वजा दूंगा।" अपने अपमान का वदला लेने के लिये, राजपूती घमंड को चूर करने के लिये एक विशाल सेना तैयार करने का हुक्म दिया।

रणथम्भौर के राजा हम्मीर ने भी अपने वीरों को अपने कर्त्तव्य-पथ पर डटे रहने का पावन संदेश दिया। उसने कहा—"वीरों! शत्रुओं ने आज हमें अकारण चुनौती दी है। वे पहाड़ी चट्टानों से सिर टकराना चाहते हैं। हम मिट्टी के पुतले नहीं, देश के लिये पुर्जे पुर्जे कट जायेंगे। मातृभूमि की स्वतन्त्रता के लिये वलिदान हो जायेंगे। मुझे विश्वास है कि राजपूती परम्पराओं को निभाने में आपका हार्दिक सहयोग मिलेगा।" प्रत्युत्तर में एक स्वर से आवाज आई—"हम मुगलों को एक सवक सिखा देंगे। हम सब स्वदेश और स्वधर्म की रक्षा के लिये अपना सर्वस्व वलिदान कर देंगे।" सभी ने एक साथ "जय एकलिंग-जय एकलिंग" से सम्पूर्ण वातावरण व गगन मण्डल को गुंजित कर दिया।

खिलजी की विशाल सेना की सूचना आकाश में उठती हुई धूल दे रही थी। यवनों की सेना में कई तोप गाड़ियां, हाथी, घोड़े व सुसज्जित पैदल सेना थी। घाटियों को पार करती हुई सेना मैदान में जमा होने लगी। राजपूती रणवांकुरे भी युद्ध स्थल पर यवनों की सेना से भीषण मुकावला करने के लिए सोत्साह तैयार थे। महाराणा

ने रण भेरी बजाई और अपने सैनिकों के साथ शत्रु पर टूट पड़े। राजपूत वीरों ने "जय एकलिंगजी" का पावन उच्च घोष किया और भूखे सिंह की भांति यवन सेना पर टूट पड़े। मुसलमानों ने भी "अल्लाहो अकबर" का नारा लगाया और युद्ध में कूद पड़े। अब क्या था? भीषण युद्ध प्रारम्भ हो गया। चारों ओर से मारो, काटो की आवाज आने लगी और लाशों पर लाशों के ढेर होने लगे। राजपूतों ने पहाड़ों से भीषण पत्थरों की वर्षा कर यवनों को निराश कर दिया। ऐसी स्थिति में खिलजी को विजय की आशा धूमिल-सी दिखाई देने लगी।

राजपूतों में पराक्रम और युद्ध कौशल अवश्य था परन्तु एकता व पारस्परिक प्रेम का अभाव था। कई दिनों तक युद्ध चलता रहा यवनों की हार प्राय: निश्चित थी। परन्तु एक राजपूत सरदार ने यवनों के प्रलोभन में फंसकर सम्पूर्ण रहस्य को खोल दिया। वह राणा की सेना में रसद पहुंचाने वाले कार्य का मुखिया था--उसने राणा को असत्य रूप में रसद समाप्त होने के समाचारों से अवगत कराया-फलत: राणा का जोश कम हो गया। भूखी सेना कब तक मुकाबला करती। राजपूत सेना यवन सेना की तुलना में भी बहुत कम थी। अब बहुत कम सरदार थे। पठान सरदार ने भी राणा का अद्भुत साथ दिया, वह भी एक अनूठा वीर व वफादार साथी था।

अन्त में यवनों का पलड़ा भारी होने लगा, विजय के चिन्ह नजर आने लगे। किले में राजपूत स्त्रियों ने जौहर का आयोजन किया तथा सभी वीर पुरुष केसरिया बाना पहन कर युद्ध में बहादुरी के साथ भीषण मारकाट मचाने लगे।। युद्ध का दृश्य बहुत भी भीषण था। बहादुर राजपूत यवनों को गाजर मूली की तरह काटने लगे। पठान सरदार ने कई यवनों को यमपुरी पहुंचा दिया। इधर यवनों की सेना भी बाढ़ की तरह आगे बढ़ रही थी, पीछे हटने का नाम न था। राणा कुछ सैनिकों के साथ युद्ध कर रहे थे। युद्ध भूमि में नीरवता बढ़ने लगी।

शाम का समय था। गिद्ध और गीदड़ चारों ओर चक्कर लगा रहे थे। मैदान में असंख्य लाशें बिछी हुई थीं। राणा की पराजय अवश्य हुई पर इसके लिए अलाउद्दीन को बहुत कीमत चुकानी पड़ी उसके चने हुये वीर सरदार मारे गये।

राणा हम्मीर का नाम आज भी इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिखा हुआ है। उसने अपनी उदारता का परिचय एक मुसलमान सरदार, जो उनकी शरण में था, रक्षा का भार उठाकर दिया। राणा ने अपने अभूतपूर्व त्याग, बलिदान व उदारता से राजस्थान के इतिहास को ऊंचा उठाया है तथा भारतीय गौरवमयी परम्परा की प्रतिष्ठा की है।

विद्यार्थियों ! आज हमें ऐसे पावन गुणों को जीवन में उतारने की आवश्यकता है जिससे कि मातृभूमि की सेवा, सफलता के साथ कर सकें। देश पर उठाने वाले हाथों को काट सकें, क्रोध से निकालने वाली आंखों को सदा के लिए निकाल सकें। परन्तु शांति के क्षेत्र में मानव-मात्र के लिए आंखें बिछादें, जय भारत।

———

३ गोरा-बादल

राजस्थान वीरों की जननि है। इस प्रान्त के राजा ही नहीं अपितु साधारण सरदारों ने भी अनुपम वीरता का परिचय दिया है। उनमें देशभक्ति, स्वामिभक्ति व जाति-प्रेम विशेष रूप से कूट-कूट कर भरा हुआ है। वे देशहित, अपने स्वामी की रक्षार्थ वलिदान होना अहोभाग्य समझते हैं। मृत्यु को त्यौहार समझने वाले रण बांकुरे सरदारों को कौन भूल सकता है-सत्य तो यह है कि ऐसे महान् व्यक्तियों के नाम स्मृति-पटल पर आते ही श्रद्धा से सिर झुक जाता है, आंसू ही पुष्प बन अर्पित होते हैं।

अलाउद्दीन खिलजी, जो दिल्ली का सम्राट था, जिसके पास शक्ति व साधनों का अतुल भंडार विद्यमान था—उसकी आशाओं पर पानी फेरने वाले, स्वप्नों को धूमिल करने वाले, मन्सूवों को उजाड़ने वाले तथा युद्ध स्थल में करारा जवाव देने वाले गोरा-वादल को कौन नहीं जानता ?

मदान्ध खिलजी ने जव परम सुन्दरी चित्तौड़ की महारानी, राजा रतनसिंह की प्रिय रानी साहिबा—पद्मिनी को अपनी वेगम बनाने का पूर्ण निश्चय कर लिया—फलतः छल कपट का सहारा लेकर रानी के दर्शन किए तथा शक्ति के नशे में चूर वादशाह ने रानी को प्राप्त करने की दृढ़ प्रतिज्ञा भी की।

अलाउद्दीन राजपूतों की वीरता से परिचित था उनसे लोहा लेना उसकी शक्ति के वाहर था अतः उसने छलपूर्ण उपाय अपनाये। जव अलाउद्दीन राजा रतनसिंह से मिलने आया तव उसका वहुत स्वागत किया तथा सभ्यता के नाते वाहर दूर तक वादशाह को पहुं-

चाने भी आया, परन्तु बादशाह ने कपट से राजा को पकड़वा दिया तथा अपने डेरों में ले गया। इसके साथ ही साथ रानी पद्मिनी से कहलवा दिया कि अगर वो राजा को जीवित देखना चाहती है तो वह (रानी) स्वयं मेरी सेवा में आजाय। इस विषम परिस्थिति में राजपूतों में रोष और भय व्याप्त हो गया। परन्तु इस दुःखपूर्ण घड़ी में धैर्य और विवेक की आवश्यकता होती है। रानी ने भी पूर्ण चिंतन व धैर्य से काम लिया। अपने चुने हुए सरदारों से परामर्श किया–इनमें प्रमुख गोरा और बादल थे।

ऐसे कठिन समय में रानी पद्मिनी, गोरा और बादल ने मिलकर बड़ी दूरदर्शिता से काम लिया। उन्होंने निश्चय किया कि इस विकट परिस्थिति में राजा रतनसिंह को कूटनीति से छुड़ाना चाहिये और युद्ध करके अलाउद्दीन के छक्के छुड़ाना चाहिये।

अतः उन्होंने अलाउद्दीन के पास कहला भेजा कि, "रानी साहिबा दिल्ली के बादशाह की सेवा में पहुंचने को अहोभाग्य मानती है। परन्तु वे मान-प्रतिष्ठा का ध्यान रखती हुई सात सौ बांदियों के साथ पालकियों में बैठकर आयेंगी। इसके साथ ही साथ उसकी हार्दिक अभिलाषा है कि वह अपने पति, मेवाड़ सूर्य, के अन्तिम दर्शन भी कर लें। अतः कारागार में उनसे मिलने की व्यवस्था एकान्त रूप में की जानी चाहिये। यदि आप यह शर्त मंजूर करने को तैयार हैं तो अनुकूल व्यवस्था की जाय।"

इस संदेश को पढ़कर मदान्ध व अदूरदर्शी अलाउद्दीन कुछ भी नही समझ सका वरन् मारे खुशी के उछल पड़ा। उसकी बुद्धि पर अन्धकार छा गया, अपनी सूझ बूझ खो बैठा। उसने सहर्ष वह शर्त मंजूर की। बादशाह का स्वीकृति-पत्र प्राप्त होते हुए सात सौ पालकियों की तैय्यारी प्रारम्भ हुई। प्रत्येक पाली में दो-दो चुने हुये सशस्त्र राजपूत वीर बैठे और छः छः वीर कहारों के भेष में शस्त्रों को छिपाये प्रत्येक पालकी को उठाकर चल दिये। यह गुप्त वीरों का

कारवां गोरा और बादल के नेतृत्व में चल पड़ा। रानी महलों में ईश्वर से प्रार्थना कर रही थी कि ईश्वर उन्हें सफलता दे।

बादशाह ने भी शर्त के अनुसार कारागार में राजा से रानी को मिलने के लिये उचित व्यवस्था कर दी। बादशाह नवविवाह के स्वप्नों में डूबा था और वह निकाह के लिये काजी को बुलाने की व्यवस्था में लीन था। इधर महाराजा को मुक्त करते ही, वह कुछ वीरों को अपने साथ ले महलों की ओर चल पड़े। सभी सशस्त्र नौजवान राजपूत वीर अपनी अपनी पालकियों से निकल कर यवनों पर टूट पड़े। अलाउद्दीन चिल्ला उठा—"दगा ! दगा !" लड़ाई प्रारम्भ हो गई। गोरा और वादल ने अपूर्व वीरता का परिचय दिया। वे बुद्धिमान व दूरदर्शी के साथ साथ वीर भी थे। उन्होंने मुसलमानों को गाजर-मूली की तरह काटना प्रारम्भ कर दिया। बादशाह इन दो बहादुरों के भयंकर वारों को देखकर घबड़ा उठा। उसने अपने डेरे को वहां से उठाने का भी फैसला किया।

यद्यपि इस युद्ध में बादल लड़ता-लड़ता मारा गया परन्तु दोनों बहादुरों ने अपने स्वामी की सफलता के साथ रक्षा को तथा बादशाह को भी वहां से कूच करवाया। यह थी उनकी अनुपम वीरता की धाक। पृथ्वी पावन हो उठी अपने सपूत की आहुति से...... वाड़ी वीरो ने उचित सम्मान दिया। राजा रतनसिंह ने कहा, "हमें आज ऐसे अनुपम-देशभक्त व स्वामिभक्त वीरों पर गर्व है। ऐसे अनूठे सपूतों ने हमारे इतिहास को गौरवान्वित किया है। मेवाड़ इनके ऋण को कभी नहीं चुका सकता। मैं वीर बादल की दिवंगत आत्मा की शांति के लिए ईश्वर से प्रार्थना करता हूं तथा वीर गोरा की सेवाओं को प्राप्त करने के लिये आह्वान करता हूं। वह नौजवान मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार करे। जय एकलिंग।

प्रिय पाठकों ! हमे गौरव है कि आज भी देश पर जब जब पाकिस्तान व चीन जैसे गद्दार पड़ोसियों ने आक्रमण किया तो हमार

राजस्थानी वीरों ने गोरा और बादल जैसा अनूठा युद्ध कौशल का प्रदर्शन किया। हमें इन लोगों से प्रेरणा लेने की आवश्यकता है तथा मां भारती की रक्षार्थ अपना सर्वस्व बलिदान कर देना है। यह देश वीरों का, ऋषियों–मुनियों का तथा स्वयं ईश्वर का भी प्यारा है। अतः हमारा कर्त्तव्य हो जाता है कि हम राष्ट्रहित सुकार्यों से उक्त वीरों की पुनः प्रतिष्ठा करें।

---

४ जयमल–पत्ता

आज भी प्रत्येक पर्यटक की आंखें चित्तौड़ दर्शन की प्यासी रहती हैं। चित्तौड़ एक अनुपम तीर्थ स्थान है। श्यामनारायण पांडेय के शब्दों में एक यात्री की हार्दिक अभिलाषा कितनी सुन्दर है—

मुझे न जाना गंगा सागर, मुझे न रामेश्वर काशी।
तीर्थराज चित्तौड़ देखने को मेरी आंखें प्यासी।

इसमें कोई दो मत नहीं कि चित्तौड़ राजस्थान में ही नहीं वरन् भारत का अद्वितीय तीर्थस्थान है।

चित्तौड़ में स्थित कीर्त्ति-स्तम्भ एक गगन चुम्बी स्मारक है। इसके दक्षिण में कुछ और आगे परम देशभक्त पत्ता–जयमल की हवेलियों के खंडहर के पावन दर्शन होते हैं। इनके पास ही एक छोटासा तालाब है जो जयमल तालाव के नाम से प्रसिद्ध है।

जयमल-पत्ता की अनूठी वीरता व अद्वितीय रण कौशल से अकबर "महान" भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका। वह केवल प्रभावित ही नहीं हुआ वरन् उसके हृदय पटल पर चिरस्थायी प्रभाव पड़ा। फलस्वरूप उसने दोनों की विशाल मूर्तियां वनाकर दिल्ली के किले के दरवाजे पर सम्मान के साथ प्रतिस्थापित कीं।

महाराणा विक्रमादित्य के बाद चित्तौड़ की गद्दी पर उदयसिंह बैठे। इसके शासनकाल में दो बार चढ़ाइयां हुईं। सन् १५४३ में जब शेरशाह सूरी मारवाड़ में राव मालवदेव पर विजय प्राप्त करके चित्तौड़ की तरफ आया तो महाराणा उदयसिंह ने उसे किले की चाबियां

सौंप दी। शेरशाह अपने प्रतिनिधि को चित्तौड़ छोड़कर चला गया। लेकिन दूसरा आक्रमण बड़ा जबरदस्त हुआ। यह चढ़ाई सन् १५६७ में अकबर ने की। महाराणा पर झूठा आरोप लगाया गया कि उसने उसके शत्रु मालवा के स्वामी बाजबहादुर को अपने यहां शरण दी। अकबर का यह आरोप केवल बहाना मात्र था। परन्तु सबल के समर्थक सभी होते हैं–कहा भी है

सबै सहायक सबल के, कोऊ न निबल सहाय।
पवन जगावत आग को, दीपहिं देत बुझाय।।

वास्तव में अकबर अपनी वीरता व शक्ति के नशे में चूर था, मदान्ध था। वह चाहता था कि सारे राजपूतों को हराकर उन्हें अपने अधीन करले। आक्रमण की खबर से संगठित योजना बनाने के लिये सारे सरदार एकत्रित हुए। परिस्थिति को देखते हुए, सभी के आपसी परामर्श से महाराणा उदयसिंह को पहाड़ों में भेजने का निश्चय किया। राजपूत सरदारों ने सर्वसम्मति से जयमल और पत्ता को अपना नेता चुना तथा उसकी अध्यक्षता में ही युद्ध करने का निश्चय किया।

जयमल-पत्ता अपने समय का माना हुआ योद्धा था। उसके हृदय में उत्साह व देश के लिए उत्सर्ग होने की पावन भावनायें कूट-कूट कर भरी हुई थी। उसने अपने सभी साथियों तथा सरदारों को एकत्रित कर प्रेरणास्पद संदेश दिया उसने कहा "वीर सरदारों!" यह समय हमारी परीक्षा का है। मातृभूमि पर आपत्ति के बादल मंडरा रहे हैं। यवनों के अनावश्यक रूप से हौंसले बढ़ रहे हैं। वे लोग जोश में अपने होश-हवाश भी भूल गये हैं। ऐसी विषम परिस्थिति में हमें विवेक से काम लेना है, एकता के सूत्र में बंधना है। मुझे आप लोगों की शक्ति व रणकौशल पर पूर्ण विश्वास है। हम दृढ़ता के साथ कह सकते हैं कि यवनों को ईंट का जवाब पत्थर देंगे-उनको बता देंगे

कि चित्तौड़ की ओर आंखें करने का क्या परिणाम होता है तथा चट्टानों से टकराने का क्या अंजाम होता है।" "जय एकलिंग" व "हर हर महादेव" के साथ सभा विसर्जित हुई।

अकबर एक विशाल सेना के साथ भादों के काले बादलों के समान मेवाड़ भूमि पर मंडराने लगा। सेना ने स्थान स्थान पर अपने डेरे लगा दिये। युद्ध प्रारम्भ की तैयारियां होने लगीं। इधर राजपूत रण बांकुरे व वीर भीलगण भी मजबूत हाथों में धनषबाण लिए पहाड़ी घाटियों में एकत्रित होगये। भीषण युद्ध शुरू हुआ पहाड़ों से बड़े बड़े पत्थर बरसाये गये यवन सेना चिल्लाती हुई भागने लगी। परन्तु यवन सेना बहुत विशाल थी उसके सामने राजपूत सेना बहुत ही अल्प थी। मारो मारो, अल्ला हो अकबर, जय एक लिंग, हर हर-महादेव की आवाज से पर्वत श्रेणियां गूंज रही थीं। बहादुर राजपूत अपनी मातृभूमि के सच्चे पुत्र, एक के बाद एक बलिदान हो रहे थे पर कई यवनों को यमलोकपुरी पहुंचा कर। युद्ध बहुत भीषण था।

वीरवर पत्ता अपने पूरे परिवार के साथ युद्धभूमि में अद्भुत रणकौशल दिखा रहा था। उसकी तथा वीर माता वीर पत्नि भी वीर वेष में अपने कर्तव्य का पालन कर रही थी। धन्य हैं वे वीर स्त्रियां जिन्होंने पुरुषों को भी वीरता का पाठ सिखाया।

अकबर ने किले में प्रवेश होने के लिए एक सुरंग भी बनवाना प्रारम्भ कर दी यद्यपि इस कार्य में कई वीर यवन काम आये, परन्तु अन्त में सफलता प्राप्त हुई। इस मार्ग के द्वारा यवन सेना किले में प्रवेश पाने लगी– ऐसी विषम परिस्थिति में वीर राजपूत सरदारों ने कुल–मर्यादा की रक्षा के लिए केसरिया वस्त्र धारण किये तथा वीर स्त्रियों ने जौहर व्रत का पालन करने की तैयारियां प्रारम्भ की। विजय की आशा छोड़ कर तमाम शूरवीर भूखे सिंह की भांति यवन सेना पर टूट पड़े। यवन सेना में खलबली मच गई। राजपूत सरदारों की संख्या अब बहुत ही अल्प थी। राजपूतों ने अपनी अनुपम वीरता

व अद्वितीय रण-कौशल से बादशाह अकबर को भी पूर्ण रूप से प्रभावित कर दिया। वह वीरवर पत्ता व जयमल की वीरता देख कर बहुत ही प्रभावित था और बार-बार विचारों में खो जाता था कि "काश ऐसे रणबांकुरे सरदार मेरे पास होते।"

वीर जयमल अकबर के हाथों छल से मारा गया। अकबर को बहुत प्रसन्नता हुई। इस प्रकार अन्त में विजय का सेहरा बादशाह अकबर के सिर पर बांधा गया—परन्तु वीर राजपूतों ने भी अमिट छाप छोड़ दी—बादशाह के हृदय पर। इसलिये बादशाह हमेशा राजपूतों के साथ मैत्री व स्नेह का हाथ बढ़ाया करता था। धन्य है उन मेवाड़-वीरों को जिन्होंने कभी भी मुगलों की आधीनता स्वीकार नहीं की वरन् हमेशा यवनों से लोहा लेने को तत्पर रहे।

बादशाह ने प्रसन्न होकर वीरवर जयमल व पत्ता की विशाल मूर्तियों को दिल्ली में किले के मुख्य द्वार पर दोनों ओर चबूतरे पर रखवाई। इस प्रकार दोनों वीरों की अनुपम वीरता व देश भक्ति जैसे महान् गुणों से प्रभावित होकर अकबर ने भी श्रद्धा के पुष्प चढ़ाये।

मेवाड़ भूमि के परम लाडलों की आज याद ताजा हो जाती है जब उनके खण्डहरों के दर्शन करने का अवसर प्राप्त होता है। इन वीरों ने अपने राजा की अनुपस्थिति में जिस कर्तव्य परायणता का परिचय दिया स्मृति मात्र से सिर श्रद्धा से नत होता है।

साथियों! वीरों का जीवन-पथ सर्वदा कण्टकों से परिपूर्ण रहा है—परन्तु उन्होंने कभी भी कांटों की परवाह नहीं की वरन् हमेशा अपने कर्तव्य-पथ पर आगे से आगे बढ़ते रहे। उन्हें सबसे बड़ा ध्यान अपनी मात्रभूमि की ओर रहा है। जब जब भी अपनी मातृ-भूमि को आपत्ति में व दुश्मनों के हाथों में देखा बस मर मिटे, बलिदान हो गये और यही है शक्ति, देशभक्ति व देश प्रेम। फलस्वरूप आज भी जब उनका नाम स्मृति—पटल पर आता है, हम धन्य हो उठते हैं उनके नामों व कार्यों को स्मरण कर।

५—महाराणा कुम्भा

"आइये, हम सब स्वदेश और स्वधर्म की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व बाजी पर लगा दें। हमें राजपूत रमणियों के दूध की परीक्षा देनी है। भगवान एकलिंग का आशीर्वाद हमारे साथ है।" महाराणा कुम्भा ने गुजरात व मालवे के सामूहिक आक्रमण का मुकाबला करने के लिये मेवाड़ के वीरों को प्रोत्साहित किया।

महाराणा की गणना मेवाड़ के महान् शासकों में की जाती है। उन्होंने केवल मेवाड़ को सुरक्षित और सुदृढ़ ही नहीं किया, वरन् बहुत से प्रदेश भी उसमें मिलाये। स्थान स्थान पर किले बनवाये और मेवाड़ को अजेय बना दिया। उन्होंने अपने जीवन में ३२ किले बनवाये और कई तालाबों और भवनों का निर्माण भी करवाया। पुराने किलों का जीर्णोद्धार भी उन्होंने करवाया। आबू पर्वत पर बना हुआ कुम्भलगढ़ का किला तो इतिहास में प्रसिद्ध है। कुम्भलगढ़ और कीर्तिस्तम्भ महाराणा की कीर्ति के अमिट स्मारक हैं।

मोकलजी के ज्येष्ठ पुत्र राणा कुम्भा के समय दिल्ली का शासन डांवाडोल स्थिति में था। कभी कोई शासक होता, कभी कोई। खिलजी वंश अपनी अन्तिम सांसें भर रहा था। भिन्न भिन्न स्थानों पर स्वतन्त्र उम्मीदवार सरदार अपनी स्वतन्त्रता में लगे हुये थे। बीजापुर, गोलकुण्डा, मालवा, गुजरात, कालपी, जौनपुर-इसी प्रकार के नये राज्य थे। इन स्थानों के सूबेदार ही वहां के राजा बन बैठे। इन नव-निर्मित राज्यों में नागौर, मालवा और गुजरात सबसे ज्यादा

शक्तिशालो थे । मालवा और गुजरात को आंख मेवाड़ पर लगा हुई थीं वे अपने राज्य में मिलाने के स्वप्न देख रहे थे ।

“महाराणा की वढ़ती हुई शक्ति से इस्लाम खतरे में है। महाराणा ने नागौड़ के सुलतान शम्सखां को पराजित करके वहां अधिकार कर लिया है। वे मुसलमानों और उनके राज्यों को समाप्त कर देना चाहते हैं।” इस प्रकार मालवा और गुजरात के मुसलमान शासकों ने सम्मलित रूप से महाराणा के विरुद्ध प्रचार करना प्रारम्भ किया। उनके इस प्रचार से और भी छोटे छोटे राजा और सरदार उनके साथ हो गये। दोनों सुलतानों ने यह तय किया कि महाराणा को पराजित करके मेवाड़ को आपस में आधा वांट लिया जाय।

महाराणा को यह खवर मिली तो वे भी इस तूफान का सामना करने की तैयारियां करने लगे। इस वार मेवाड़ के जीवन-मरण का प्रश्न सम्मुख था। मेवाड़ के आसपास के राजाओं और जागीरदारों को युद्ध का निमन्त्रण दिया गया। सभी ने इस निमन्त्रण को सहर्ष स्वीकार किया और वे सभी सदल-वल चित्तौड़ की ओर कूच करने लगे। चित्तौड़ के आस-पास दूर दूर तक सैनिक ही सैनिक नजर आने लगे। सारा वातावरण लड़ाई के उत्साह से भर गया। सभी आमन्त्रित राजाओं और जागीरदारों को एकत्रित कर सारी स्थिति को स्पष्ट रूप से महाराणा ने समझाई। सब लोगों ने एक स्वर से कहा कि यवनों ने जवरदस्ती अपनी शक्ति में अन्धे होकर मेवाड़ पर आक्रमण करने की विशाल योजना वनाई है। अतः हमारा कर्त्तव्य उनसे डटकर मुकावला करना ही है। हम उनसे जी-जान से लडेंगे और बता देंगे कि मेवाड़ियों के विरुद्ध टक्कर लेने के कितने भीषण परिणाम होते हैं। सभी लोगों के निश्चयानुसार आक्रमण के पूर्व ही सेना को आगे वढ़ा दिया गया।

राजपूत वीरों में नवीन उत्साह की लहर दौड़ाने के लिये, उनकी बांहों में प्रवल रक्त का संचार करने के लिए महाराणा ने

सबको सम्बोधित करते हुए कहा, "मेवाड़ के वीर नौजवानों ! यवनों ने आज मेवाड़ की पावन भूमि को चुनौती दी है। आज परीक्षा का समय है, मां की पुकार है। लेकिन हमारे हाथों में काच की चूड़ियां नहीं हैं। हम उनसे डटकर लोहा लेंगे। मेवाड़ के वीरों ने परम्परा से मातृभूमि के लिये बड़ा से बड़ा बलिदान किया है। उनका प्राचीन इतिहास वीरता और बलिदान का गौरवमय इतिहास है। इस परम्परा को हमें पूर्ण रूप से सुरक्षित व गौरवमय बनाये रखना है। मुझे आपकी वीरता और बलिदान पर अटूट विश्वास है। हम निश्चित रूप से शत्रु के दांत खट्टे करेंगे।" जय एक लिंग के भीषण घोष के साथ सभा विसर्जित हुई।

महाराणा के इन जोशीले शब्दों ने सेना में आग पैदा करदी। महाराणा का जयघोष हुआ और वह विशाल-वीर-वाहिनी तूफान की भांति आगे बढ़ी। इस सेना में डेढ़ हजार हाथी और एक लाख से अधिक पैदल एवं सवार थे। समरभूमि में शत्रु से दो, दो हाथ करने के लिये वो उत्सुक थे। उनकी व्याकुल आंखें अपने शत्रु को तलाश कर रही थीं और भुजायें फड़क रही थीं. यवनों को यमलोकपुरी पहुंचाने के लिये तड़फ रही थीं। सेना ने मेवाड़ की सीमा पार की और मालवे की सीमा पर पैर रखा। अब जमीन ढालू थी। ढालू जमीन को भी पार किया गया। इसके बाद विस्तृत मैदान सामने था। मैदान में दूर दूर तक घनी झाड़ियां थीं। झाड़ियां भी इतनी सघन थी कि इनमें छिपे व्यक्तियों को देखना तक कठिन था। ये झाड़ियां, घाटिया और विस्तृत मैदान मेवाड़ के लिये वरदान स्वरूप सिद्ध हुआ महाराणा ने अपनी सेना को तीन भागों में विभक्त किया। प्रथम भाग को झाड़ियों में छिपकर सावधानी के साथ आक्रमण करने का आदेश दिया गया। द्वितीय भाग को पहाड़ों की घाटियों में जो कि बहुत संकुचित थी, मोर्चाबन्दी का आदेश दिया। तृतीय भाग को मैदान में डटकर शत्रु सेना का सामना करने का आदेश दिया गया।

राजा ने निर्देश दिया कि जैसे ही मैं भेरी वजाऊं लड़ाई, प्रारम्भ करदी जाय ।

आकाश में धूल उड़ती हुई दिखाई देने लगी । मुसलमानों की विशाल सेना वढ़ती आ रही थी । यवन सेना की प्रथम पंक्ति दिखाई देने लगी । घाटी को पार करके वह मैदान में आ रही थी । सेनापति ने अपनी सेना को मैदान में फैलाकर और सारी सेना को व्यूह में खड़ा कर दि या । मसलमान लड़ाई के लिये तैयार हो गये । इधर राजपूत वीर भी महाराजा के आदेश की प्रतीक्षा कर रहे थे ।

महाराणा ने भेरी वजाई और अपने सैनिकों के साथ यवन सेना पर टूट पड़े । राजपूत वीरों ने जय एकलिंग जी के भीषण उच्च-घोष के साथ भूखे सिंह की भांति दुश्मनों पर टूट पड़े । मुसलमानों ने भी अल्लाहो अकवर का नारा लगाया और राजपूतों से लोहा लेने को तैयार हो गये । घमासान युद्ध प्रारम्भ हुआ । चारों ओर मारो-काटो की आवाज आने लगी और लाशों के ढ़ेर होने लगे । लेकिन जव चारों ओर झाड़ियों से गोलियां मैदान में स्थित यवन सेना पर वरसने लगी तो दुश्मनों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा । उनके हौसले पस्त होने लगे, वे घवराने लगे । मालवा और गुजरात के शासकों ने अपनी सेना को हर प्रकार से प्रोत्साहित किया और स्वयं भी युद्ध में कूद पड़े । मुसलमानों में जोश की लहर दौड़ पड़ी परन्तु वह क्षणिक ही रही । झाड़ियों से आने वाली गोलियों ने यवनों का काम तमाम कर दिया, उनकी शक्ति प्रतिक्षण कम होने लगी । युद्ध में महाराणा ने भी काफी भयंकर मारकाट मचा रखी थी । महाराणा ने लपककर मालवा के सुल्तान पर आक्रमण किया-वेचारा घवरा उठा । धीरे-धीरे मुसलमानों की स्थिति विगड़ती ही गई । अन्त में गुजरात का सुल्तान युद्ध-स्थल से भाग उठा । सुल्तान के भागने से सेना में खल-वली मच गई, वे भी भागने लगी । परन्तु महाराणा की सेना का तीसरा भाग घाटियों में था । और वहीं से यवनों का भागने का रास्ता

था। भागने वालों को वीर, राजपूतों ने घेरा, कईयों को मौत के घाट उतार दिया गया। बहुत से मुसलमानों ने हथियार रख दिए और जान बचाने के लिये राजपूतों की दासता स्वीकार करली। बेचारे मालवे के सुलतान ने अपनी सेना को संगठित करने का खूब प्रयत्न किया लेकिन असफल रहा। महाराणा की भी बहुत क्षति हुई लेकिन जयमाला उनके ही गले में पड़ी। इस प्रकार मालवा और गुजरात की सम्मिलित सेना बुरी तरह से हार गई और मुसलमानों के सपने हमेशा के लिये चकनाचूर हो गये।

विजयोल्लास में आनन्दित राजपूत वीर अपने घर लौटे। बड़ी धूमधाम के साथ सेना ने चित्तौड़ में प्रवेश किया। जनता ने बड़े उत्साह से विजेताओं का स्वागत किया। राजपूत रमणियों ने वीरों पर पुष्प वर्षा की और रात को दिवाली मनाई गई। महाराणा की इस विजय ने उन्हें भारतवर्ष के अत्यन्त शक्तिशाली राजाओं की श्रेणी में ला दिया।

महाराणा केवल सेना संचालन और शासन में ही चतुर नहीं थे, वे ललित कलाओं के प्रेमी भी थे। वे योद्धा तो थे ही, काव्य प्रेमी भी थे। साहित्य और संगीत के जबरदस्त ज्ञाता और विद्वान थे। वे कवि थे, नाटककार थे और संगीताचार्य भी थे। आपने उक्त विषयों से सम्बन्धित अनेक ग्रन्थों की भी रचना की है। वे वेद, शास्त्र, उपनिषद स्मृति मीमांसा, राजनीति, व्याकरण, गणित और तर्क शास्त्र के प्रसिद्ध ज्ञाता और विद्वान थे। स्वयं विद्वान होने के कारण विद्वानों का आदर भी करते थे। राजसभा में भी अनेक विद्वानों और गुणी लोगों को आश्रय दिया गया था।

इस प्रकार महाराणा एक अद्वितीय व्यक्ति थे। वे सैनिक साधक साहित्यिक और एक सफल शासक थे। उनके समय में मेवाड़ की सर्वाङ्गीण प्रगति हुई। उन्होंने अपनी वीरता से दुश्मनों को बार-बार बुरी तरह पराजित किया, उनकी शक्ति को बिल्कुल क्षीण कर

दिया। एक सफल शासक के रूप में अपनी सेना को पूर्ण रूप से संगठित व सशक्त बनाये रखा। सभी आस पड़ौस के राजा, जागीरदार व अन्य सरदार उनके न्यायपूर्ण व्यवहार से प्रसन्न थे तथा महाराणा के प्रत्येक आदेश का तत्परता के साथ पालन करते थे। अपनी कलाप्रियता व विद्वता से विद्वानों व कलाकारों का स्वागत किया और सुन्दर शासन व्यवस्था से प्रजा को सुखी और सम्पन्न बनाया।

साथियों ! हमारा सौभाग्य है कि राजस्थान में ऐसी सर्वगुण-सम्पन्न आत्मा का पदार्पण हुआ, जिन्होंने अपने पराक्रम और विवेक से दुश्मनों को अच्छा सबक सिखाया तथा भारत में चित्तौड़ को प्रतिष्ठापूर्ण स्थान दिलाया। जहां के बच्चे और जवान दुश्मन की आवाज सुनते ही उसका मुकाबला करने के लिए सधे रहते थे—कवि ने ठीक ही कहा है कि—

अपने अचल स्वतन्त्र दुर्ग पर सुनकर वैरी की बोली।
निकल पड़ी लेकर तलवारें, जहां जवानों की टोली॥

६—महाराणा प्रताप

'जिस राजपूत ने मुगल के हाथ में अपनी बहन को दिया है, उस मुगल के साथ उसने भोजन भी किया होगा, सूर्यवंशीय वाप्पा-रावल का वंशधर उसके साथ भोजन नहीं कर सकता।" राजा मान इस अपमान को नहीं कर सके। वे तुरन्त दिल्ली की ओर चल पड़े और उन्होंने बादशाह अकबर से राणा प्रताप द्वारा किये गये व्यवहार का वर्णन प्रस्तुत किया।

महाराणा प्रताप मेवाड़ के राजा उदयसिंह के पुत्र थे। इस समय हिन्दुस्तान का मुगल बादशाह अकबर था। अकबर एक सफल कूटनीतिज्ञ शासक था, उसने अपनी कूटनीति से सभी राजाओं को अपने आधीन कर रखा था। कई कायर राजपूतों ने मुगल शासक को प्रसन्न करने के लिए तथा उसका कृपा-पात्र बनने के लिये अपनी लड़कियों, बहनों आदि का विवाह उसके साथ कर दिया। किन्तु मात्र-भूमि के सच्चे सपूत ने अंतिम समय तक कठिन यातनाओं को सहते हुए भी अकबर के समक्ष अपना सिर नहीं झुकाया। वह आजादी का दीवाना था। मरना जानता था, झुकना नहीं। इसी कारण प्रताप का प्रताप हमेशा अकबर की आंखों में खटकता रहता था।

अपमान का बदला लेने के लिए राजा मानसिंह ने अकबर अर्थात् अपने बहनोई को महाराणा के विरुद्ध काफी भड़काया। अकबर इसी प्रतीक्षा में बैठा था कि राणा से युद्ध कर उसे नीचा दिखाया जाय।

अकबर की सेना का प्रतिनिधित्व उसका शाहजादा सलीम कर रहा था। एक विशाल सेना के साथ राजा मान और सलीम मेवाड़

भूमि की ओर आगे वढ़ते हुये आ रहे थे। इधर वीर केशरी प्रताप के पास २२००० (वाईस हजार) राजपूत और वीर भील भी उसके सहायक थे। परन्तु इन सबसे अधिक सहायक उनके हृदय का प्रचंड उत्साह था। इस सहायता के आधार पर ही राणाजी ने मुगलों की महान् सेना का मुकावला पूर्ण दृढ़ता व वीरता के साथ किया।

महाराणा के २२००० वीर राजपूत सैनिक अकवर की १ लाख मुगल सेना पर वाज की तरह टूट पड़े। यद्यपि राजपूत सेना कम थी परन्तु युद्ध कौशल और साहस में यवनों से काफी वढ़ी चढ़ी थी। राणाजी स्वयं एक वीर सैनिक के रूप में मुगल सेना पर भयंकर आक्रमण कर रहे थे, वेचारे यवन उनके आते ही भाग जाते थे—वहुत कम थे जो उनका मुकावला करने का साहस करते। इधर पहाड़ी घाटियों में वीर भील वाणों से यवन-सेना को तितर–वितर कर रहे थे।

महाराणाजी अपने प्रचंड शत्रु मानसिंह की खोज कर रहे थे। इसी मध्य उन्होंने हिंदू वैरी वादशाह के वड़े पुत्र सलीम को अपने सम्मुख देखा तो उनका उत्साह और साहस दूना हो गया। उन्होंने भयंकर भाला उठाया और अपने प्यारे चेतक को सलीम की ओर चलाया। उनका प्यारा घोड़ा चेतक एक वीर योद्धा से कम न था— राणाजी का इशारा पाकर वह सलीम के हाथी पर भी चढ़ गया। राणाजी के भीषण वार से महावत व शरीर रक्षकगण मारे गये तथा भाग्यवश सलीम हाथ से वच गया। महावत के गिरते ही निरंकुश होकर हाथी सलीम को संग्राम से लेकर भागा। सलीम भागा परन्तु प्रतापसिंह ने भी उसका पीछा नहीं छोड़ा। यवनों की अगणित सेना शाहजादे को वचाने के लिये अगणित वार करने लगी। इधर निडर और कठोर राजपूतगण भी प्रताप के प्रताप की रक्षा करने के लिये तथा मुगल सेना का घमण्ड चूर करने के लिये भीषण युद्ध करने लगे।

सैकड़ों मुगल वीर महाराणाजी के हाथ से मारे गये। परन्तु यवन सेना के सम्मुख वहुत कम संख्या में वीर राजपूत सेना कव तक

लोहा लेती, फिर भी यवनों को राजपूतों के भीषण वारों से छठी का दूध याद आ गया था—वे महाराणा के नाम मात्र से घबड़ा रहे थे। धीरे धीरे महाराणा की सेना का पक्ष निर्बल होने लगा।

राजपूत-कुल-कलंक राजा मानसिह की खोज करते करते राणा शत्रु सेना में विचरण करने लगे। परन्तु मस्तक पर मेवाड़ राजछत्र लगा हुआ था, उसको देख कर मुगल सेना ने इनको घेर लिया। महाराणा इस समय विशेष संकट में थे। आसपास में इनकी सहायता के लिये कोई सामन्त या सरदार न था। परन्तु थोड़े ही समय में "जय राणाप्रताप की जय"! का घोष जोरों से सुनाई दिया। इस जयनाद के साथ ही वीरवर झालापति मन्नाजी झपटते हुये सेना सहित प्रताप के निकट आ पहुंचे। मन्नाजी ने महाराजा से ऐसे संकट के समय राजचिन्ह देकर वहां से निकल जाने की प्रार्थना की। महाराणा ने कहा" मन्नाजी! रण में पीठ दिखाना राजपूत का काम नहीं। यह कायरता पूर्ण कार्य मैं नहीं कर सकता। मात्रभूमि की रक्षा के लिए मैं अन्तिम श्वास तक लड़ता रहूंगा। आप मुझे यह क्या सलाह दे रहे हैं।

मन्नाजी ने कहा "महाराज यह समय विलम्ब करने का नहीं। हिन्दुओं की रक्षा के लिए, मेवाड़ भूमि को स्वतन्त्र कराने के लिए, मेवाड में घुसे हुए विदेशियों को निकालने के लिए यह आवश्यक है कि आप प्राणों की बलि न दें! हम आपको रण से नहीं हटा रहे वरन् निरन्तर मुगलों (विदेशियों) से युद्ध करने के लिए यहां से इस समय अलग कर रहे हैं।

मन्नाजी की बातों का राणाजी पर असर हुआ। उन्होंने राजपूत सरदारों के परामर्श का पालन किया तथा वहां से अलग हो गये। राणा ने अपना छत्र और झण्डा झालाजी को दे दिया। इधर वीरवर मन्नाजी को ही राणा समझ कर मुगल सैनिक उन पर टूट पड़े। मन्नाजी ने प्रचण्ड युद्ध कौशल दिखाया परन्तु विशाल सेना का मुका-

बला न कर सके और कई यवनों को मार कर स्वयं भी मातृभूमि की गोद में हमेशा के लिए सो गये।

महाराणा का घोड़ा चेतक विश्वासपात्र, मनुष्यों के समान बुद्धि रखने वाला, इशारा पाते ही हवा से बातें करने लगा। हजारों लोगों ने महाराणा को रोकने के लिए,उन पर आक्रमण करने के लिए चेतक पर तीर, बरछे, फेंके परन्तु वह जख्मी होकर भी अपने प्रिय राजा को लेकर मुगल सेना के बीचोंबीच होकर चला जा रहा था। दो पठान सरदारों ने राणा का पीछा किया और उन्होंने भी अपने घोड़े दौड़ा दिये।

महाराणा प्रतापसिंह का छोटा भाई-शक्तिसिंह जो इस समय अकबर की सेना में नायक का काम कर रहा था ? सबकुछ देख रहा था। राणा के प्राणों को संकट में देख कर ममत्व जाग पड़ा। अतः भाई की रक्षार्थ उसने पठान सैनिकों का पीछा किया और उन सैनिकों को अपनी गोली का शिकार बनाया। शक्तिसिंह ने अपने भैया प्रताप को रुकने के लिए कहा किन्तु उन्होंने एक नहीं सुनी और नदी प र करने तक घोड़े पर दौड़ते रहे। जब नदी पार करली तो घोड़ा थक चुका था वे घोड़े से उतर पड़े और पीछे घूम कर देखा तो भाई शक्तिसिंह खड़ा था। महाराणा प्रताप ने कहा "भाई शक्ति ! तुम अब भी मेरे प्राणों के पीछे पड़े हो ! लो आज अपने हाथों से ही इस प्रताप का अन्त कर दो, सारा मेवाड़ उजड़ चुका है और आँखें उजड़े हुए मेवाड़ को नहीं देखना चाहती"। शक्तिसिंह घोड़े से उतर कर महाराणा के चरणों में गिरकर बच्चों की तरह बिलख बिलख कर रोने लगे और कहने लगे कि "भैया ! मेरा अपराध क्षमा कर दो, मुझ दोषी को माफ कर दो। महाराणा के नेत्रों में भी आंसू थे। यह था अनूठा मिलन.................।"

महाराणा ने अपने घोड़े की ओर देखा, वह अपनी करुण आंखों से विदाई मांग रहा था। देखते देखते प्यारे चेतक के प्राण-पखेरू उड़

गये। महाराणा का एकमात्र सहारा, युद्ध-स्थल में विश्वास पात्र साथी अंगरक्षक, आज वह भी चल बसा—हमेशा के लिये। महाराणा फूट-फूट कर रोने लगे। चेतक की विदाई उनके लिये हृदय विदारक थी। शक्तिसिंह ने उनको सान्तवना दिलाई और अपना घोड़ा राणा को दे दिया।

इस युद्ध के पश्चात महाराणा प्रताप को अपने देश के लिये, स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए, मेवाड़-भूमि को मुक्त करवाने के लिये अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। हिन्दुओं के तिलक, स्वतन्त्रता के महान पुजारी, प्रातः स्मरणीय महाराणा प्रताप को बारह वर्ष एक सैनिक की भांति भूखे प्यासे रहकर जंगलों और अरावलियों की पहाड़ियों में छिप छिप कर दिन व्यतीत करने पड़े। ऐसी विषम परिस्थिति में भी राणा को कभी-कभी अकबर की सेना का मुकाबला करना पड़ता था। उनके साथ छोटे छोटे बच्चे व महाराणी भी थी। जीवन पूर्ण कष्टमय था। बादशाह अकबर राणा को पकड़ने की ताक में था। उसने कई प्रयत्न किये परन्तु असफल रहा।

राणा अपनी स्त्री और बच्चों के साथ बीहड़ जंगलों में घास की रोटी खाकर जीवन निर्वाह करते थे। उन रोटियों को भी कभी कभी वन के बिलाव बच्चों से छीनकर ले जाते, बच्चे रो पड़ते, कितना करुण दृश्य था। परन्तु राणा अपने प्रण से कभी विचलित नहीं हुये। उनको चिन्ता थी केवल मेवाड़ भूमि को बंधनों से मुक्त करने की। हर समय इसी विषय पर चिन्तन रहता था। अन्त में स्वाधीनता के पुजारी, मातृभूमि के सच्चे सपूत की प्रार्थना भगवान ने सुन ली और मेवाड़ भूमि के सच्चे सेवक "भामाशाह" ने अपना असंख्य द्रव्य राजाजी के चरणों में अर्पित कर दिया। धन्य है मातृभूमि के लाड़ले भामाशाह को जिसने देशहित अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया। राणाजी के हृदय में पुनः साहस की लहर दौड़ पड़ी और सेना का संगठन कर अपने पौरुष से कई किलों पर अधिकार कर लिया, यवनों से छीनकर।

वे अपने प्रिय चित्तौड़ के किले को मुक्त न करा सके उसके पूर्व ही उनका स्वास्थ्य गिरता गया और मृत्यु शय्या पर सोना पड़ा। उन्होंने अपने पुत्र व वीर सामन्तों को बुलाकर कहा, "वीर सपूतो! दृढ़ प्रतिज्ञा करो कि मेरे मरने के बाद मेरी प्रतिज्ञा को पूर्ण करोगे और सम्पूर्ण मेवाड़ भूमि को स्वतन्त्र कराओगे।" सभी उपस्थित वीर सामन्तों ने तथा उनके वीर पुत्र अमरसिंह ने मरते दम तक मुगलों से स्वतन्त्रता संग्राम जारी रखने की दृढ़ प्रतिज्ञा की। इन शब्दों से महाराणा की आत्मा को शांति मिली और सदा के लिये मातृभूमि की गोद में सो गये।

धन्य है महाराणा के आदर्श, जिन्होंने अपना गौरवशाली मस्तक कभी यवनों के सामने नहीं झुकाया वरन् हमेशा विदेशियों को वीर भूमि से अलग करने के लिए घोर संघर्ष किया।

७–पृथ्वीराज चौहान

चौहान वंश के सूर्य जिन्होंने अपनी वीरता व पौरुष के वल पर अजमेर से दिल्ली तक विजय-पताका को फहराया। कहा जाता है कि चौहान अग्निवंशीय क्षत्रिय है, जिनकी उत्पत्ति राक्षसों को नष्ट करने के लिये वशिष्ठजी के अग्निकुण्ड से हुई थी।

महाराजा पृथ्वीराज के पिता का नाम सोमेश्वर था। महाराजा सोमेश्वर अपने समय के वड़े प्रतापी राजाओं में से थे। उनकी राजधानी अजमेर थी। उनकी वीरता से प्रसन्न होकर दिल्ली के राजा अनंगपाल ने अपनी कन्या कमलावती का विवाह उनके साथ किया। इन्हीं महाराणी कमला के गर्भ से वीर केशरी महाराज पृथ्वीराज का जन्म हुआ।

पृथ्वीराज को वचपन में कोई पुस्तकीय शिक्षा नहीं दी गई। यह वीरता का युग था। अतः शारीरिक शिक्षा पर विशेष वल दिया गया। उन्हें घुड़सवारी, धनुर्विद्या, शस्त्र संचालन और युद्ध विद्या में निपुण किया गया। वे चतुर और वीर थे। फलस्वरूप १३ वर्ष की अल्प अवस्था में ही युद्ध-विद्या के पंडित वन गये। शब्द भेदी वाण मारने में तो वे अद्वितीय थे, भाला चलाने में भी उनका कोई सानी न था।

कहावत प्रसिद्ध है कि "होनहार विरवान के होत चीकने पात।" वाल्यावस्था में ही उनकी वीरता चमक रही थी। उन्होंने पिता के राज्य कार्यों में भाग लेना प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने १६–१७ वर्ष की अवस्था में ही युद्ध में कई वहादुरों के दांत खट्टे कर दिये। सभी

राजा लोग उनकी वीरता से प्रभावित थे। उनका आकर्षक व्यक्तित्व था।

पृथ्वीराज राजगद्दी पर बैठे। गद्दी पर बैठते ही उन्होंने गजनी के बादशाह मोहम्मद गोरी के घमंड को चूर कर किया। गोरी किसी बहाने से भारत का धन लूटना चाहता था तथा इस्लाम का प्रचार करना भी।

गोरी अपनी विशाल सेना के साथ अपने स्वप्न को साकार करने के लिये रवाना हुआ। इधर पृथ्वीराज को खबर मिलते ही अपने वीर सामन्तों को एकत्रित किया तथा युद्ध सम्बन्धी विषयों पर परामर्श किया। इसमें निश्चय किया गया कि गोरी को यहां तक आने का अवसर न दिया जाय वरन् सीमा पर ही रोक लिया जाय। उधर यह खबर कि पृथ्वीराज अपनी वीर सेना के साथ सीमा पर ही रोक के लिये आ रहा है तो उसने जल्दी जल्दी चलना प्रारम्भ किया। सारूण्डा नामक स्थान पर दोनों सेनाओं का भीषण मुकाबला हुआ। गोरी का सेनापति तातारखां था। इधर पृथ्वीराज के वीर सेनापति चामुण्डराय थे। यवन सेना को भारी क्षति पहुंची। उनके वीर सेनापति भी युद्ध में काम आगये। स्थिति इतनी विकट और निर्बल होगई कि सेना के पैर उखड़ गये और वह भाग खड़ी हुई। गोरी ने सैनिकों को जोश दिलाया और युद्ध के लिए रोका—प्रयत्न निष्फल रहा। पृथ्वीराज भयंकर मारकाट मचाते हुये अपने शिकार के पास पहुंच गये। गोरी ने युद्ध किया लेकिन पकड़ लिया गया।

गोरी पृथ्वीराज की राजधानी में पांच दिन तक रहा। इस अवधि में सुलतान का बहुत मान-सम्मान किया और अपने पास रखा। छठे दिन जब गोरी ने प्रतिज्ञा की कि अब वह कभी आक्रमण करने का इरादा भी न करेगा तो उसे मुक्त कर दिया गया। यह थी पृथ्वीराज की विशालता और महान पराक्रम का परिचय।

मोहम्मद गोरी के मन में पृथ्वीराज से बदला लेने की भावना प्रवल थी। वह इसी अवसर की तलाश में था कि कोई बहाना मात्र मिल जाय तो पराजय और अपमान का बदला लिया जा सके। वह हमेशा बेचैन व अप्रसन्न रहता था।

पृथ्वीराज ने गोरी को कई बार युद्ध में पराजित किया। परन्तु गोरी अपनी प्रतिज्ञा पर कभी भी दृढ़ न रहा।

इधर राजा जयचन्द की पुत्री संयोगिता पृथ्वीराज से बहुत प्रेम करती थी जब कि जयचन्द दुश्मनी। समय पड़ने पर पृथ्वीराज ने अपनी प्रेमिका संयोगिता का स्वयंवर से अपहरण किया, वह बहुत प्रसन्न थी, उसकी हार्दिक अभिलाषा पूर्ण हुई। परन्तु जयचन्द क्रोध से भरा था, वह पृथ्वीराज से बदला लेना चाहता था।

जयचन्द कन्नौज का राजा था। उसके पास भी काफी सैन्य संगठन व शक्ति संचित थी। वह जैसे तैसे पृथ्वीराज चौहान से बदला लेना चाहता था। उसका क्रोध चरम सीमा पर था। इस प्रकार पृथ्वीराज के शत्रु देश के अन्दर और बाहर दोनों ओर ही हो गये। जयचन्द के पास इतनी शक्ति नहीं थी कि वह अकेला पृथ्वीराज का मुकावला कर सके तथा युद्ध में हरा सके। अतः उसने कूटनीति से कार्य लिया। और पृथ्वीराज के शत्रु गोरी से सांठ-गांठ की। वह जानता था कि उससे मिलकर लड़ने में सफलता मिल सकती है। आवेश में व वदले की भावना से उसने गोरी को भारतवर्ष पर आक्रमण करने के लिए आमन्त्रित किया। और लिखित रूप में वचन दिया कि "मैं आपकी पूरी सहायता करूंगा।" जब गोरी को यह पत्र मिला उसकी खुशी का कोई ठिकाना न रहा। उसका स्वप्न आज साकार हो उठा, पत्र को बार बार पढ़ा। उसे पूरा विश्वास हो गया कि शक्तिशाली जयचन्द की मदद से उसकी सफलता निश्चित है। युद्ध की तैयारियां वह पहले ही कर रहा था। इस पत्र के मिलते ही तैयारियों के कार्य अधिक वेग और उत्साह के साथ होने लगे।

गोरी ने एक विशाल सेना का संगठन किया और भारत को कूच किया। गोरी के मित्र जयचन्द ने स्वागत किया और अपनी सशक्त सेना को भी साथ कर दिया। भीषण युद्ध की तैयारियां थीं।

इधर पृथ्वीराज अपनी नव-पत्नि संयोगिता के प्रेम-पाश में जकड़े हुए महलों में आनन्द ले रहे थे। परन्तु आंखें खुलते ही युद्ध की भयंकर तैयारी प्रारम्भ की और शीघ्र ही गोरी का मुकावला करने के लिए चल पड़े। उधर गोरी की सेना भी प्रवल वेग से आ रही थी। दोनों सेनायें तराइन के मैदान में आ डटीं। दोनों सेनाओं में भीषण मुठभेड़ हुई। पृथ्वीराज की सैनिक तैयारी कम थी। उधर गोरी और जयचन्द ने संयुक्त मोर्चा तैयार किया था। इतना होने पर भी पृथ्वीराज अपनी सेना के साथ भूखे वाघ की भांति दुश्मन की सेना पर टूट पड़े। शत्रु की प्रवल सेना के वेग को कव तक रोका जाता। वार वार हारने पर भी गोरी ने सैनिक तैयारी की, जयचन्द से मित्रता का हाथ वढ़ाया और विशाल सैनिक संगठन तैयार किया।

"घर का भेदी लंका ढहावै" वाली उक्ति सत्य चरितार्थ हुई। जयचन्द ने पृथ्वीराज का सारा रहस्य खोल दिया। युद्ध में पृथ्वीराज पराजित हुए तथा पकड़ लिये गये। कैदी के रूप में पृथ्वीराज को गजनी ले जाया गया।

पृथ्वीराज रासौ के रचयिता चंद वरदाई पृथ्वीराज को अपना स्वामी और मित्र समझते थे। उनको जव ये समाचार मालूम हुए तो वहुत दुःख हुआ और विपत्ति की ओर अवस्था में वे स्वयं भी गजनी पहुंचे।

वहां अपने स्वामी की स्थिति देखकर अत्यन्त दुःखी हुए। परन्तु सच है-वीर मनुष्य आपत्तियों से घवराते नहीं वरन् विवेक और शक्ति से काम लेकर उस पर विजय प्राप्त करते हैं।

पृथ्वीराज वचपन से ही शब्द भेदी वाण चलाने में चतुर थे। चन्दरबरदाई ने अन्तिम समय में इस कला से लाभ उठाने की तरकीव सूझी। उन्होंने अपने वाक्-चातुर्य से गजनी के सम्राट गोरी को अपनी ओर आकर्षित कर लिया और दरबार में अच्छा स्थान भी प्राप्त कर लिया। एक दिन उन्होंने गोरी से कहा "जहांपनाह, पृथ्वीराज शब्द-भेदी बाण चलाने में बड़े चतुर है। यदि आज्ञा हो तो उनसे अपनी कला का प्रदर्शन करने के लिए निवेदन करूं।" गोरी को भी इस कला को देखने की उत्सुकता पैदा हुई। उन्होंने इसके लिए आज्ञा भी दे दी। कवि चन्द मन ही मन वहुत प्रसन्न हुआ क्योंकि गोरी से बदला लेने का सुअवसर आसानी से प्राप्त हो गया।

कवि चन्द पृथ्वीराज के पास आया और सारी बातें समझाई तथा अवसर को नहीं चूकने का आग्रह भी किया। पृथ्वीराज इस योजना से सहमत हो गए। यथा समय राजदरबार में सब लोग प्रद-र्शन देखने हेतु उपस्थित हुए। पृथ्वीराज को एक धनुष वाण दे दिया गया। जब सब तैयारियां हो गई तो चन्द कवि ने निम्न कविता पढ़ी—

एही वाण चौहान ! राम रावण उत्थयो।
एही वाण चौहान ! करण सिर अर्जुन कट्ठयो ॥
एही वाण चौहान ! शम्भु त्रिपुरासुर सध्यो।
एही वाण चौहान ! भ्रमर लछमन कर बंध्यो ॥
सो ही वाण आज तो कर चढ्यो चन्द विरद सच्चो सवै।
चौहान राज संगर धनो मत चूके मोटे तवे ॥
चार वांस चौबीस गज अंगुल अष्ट प्रमाण।
एते पर सुलतान है मत चूके चौहान ॥

इतना कहकर चन्द कवि ने गोरी से कहा—जहांपनाह, पृथ्वीराज आपके वन्दी है, अतः वाण चलाने की आज्ञा दीजिए।" आज्ञा

के शब्द सुनते ही ऐसा वाण मारा कि वेचारे गोरी का सिर धड़ से अलग हो गया। दोनों ने (पृथ्वीराज और कविचन्द) ने उसी समय आत्म हत्या करली।

पृथ्वीराज भारतवर्ष के वीर, उत्साही एवं उदार हिन्दू सम्राट थे। जिन्होंने अपनी वीरता से सारी भारत में धाक जमा रखी थी। वे एक कुशल शासक, योग्य सेनापति थे। यदि उनमें विलासिता न होती और हमारे देश में जयचंद जैसे कुल-कलंक न होते तो हिन्दू साम्राज्य का अन्त न होता। विदेशियों के भारत में पैर न जम पाते, वल्कि उनको उल्टे पांव अपने स्थान दौड़ना पड़ता, इतिहास का रूप वदल जाता।

साथियों! एकता ही जीवन में शक्ति को स्रोत वहा सकती है। जीवन में सफलता वहीं मिलती है जहां हम विलासिता से दूर हैं।

८—महाराणा अमरसिंह

जिस प्रकार मातृभूमि के सपूत, स्वतन्त्रता के महान पुजारी, आजादी के दीवाने महाराणा प्रताप ने जीवन पर्यन्त अकबर बादशाह से लोहा लिया और मेवाड़ को स्वतन्त्र कराने दृढ़ प्रतिज्ञा की—उसी प्रकार अपने पिता की भांति दृढ़ प्रतिज्ञ महाराणा अमरसिंह ने जहांगीर से डटकर मुकाबला किया। ऐसी राजपूत वीरों की कहानियां जब पढ़ने या सुनने को मिलती है तो बलिदान, त्याग और वीरता से हम रोमांचित हो उठते हैं तथा स्वत: ही श्रद्धावश उन वीरों के प्रति सिर झुक जाता है, उसी घड़ी हम धन्य हो उठते हैं।

अकबर बादशाह ने अपनी कूटनीति व चातुर्य से बड़े बड़े राजाओं को अपने अधीन व निस्तेज कर दिया था और चारों ओर अपना प्रभुत्व जमा लिया था। यद्यपि अपनी स्वतन्त्रता को कायम रखने के लिए डटकर आपत्तियों का मुकाबला करने के लिये राणा प्रताप को कांटों पर चलना पड़ा, परन्तु यवन बादशाह के सामने कभी नतमस्तक नहीं हुये। पिता की भांति वीर पुत्र महाराणा अमरसिंह ने भी दिल्ली सम्राट से हमेशा टक्कर ली। वे अपने पिता की अन्तिम इच्छा पूरी करना चाहते थे। उधर जहांगीर भी अमरसिंह का गौरव नष्ट करने पर तुला था।

महाराणा अमरसिंह बचपन से ही आपत्तियों में पले थे। आंधियों ने ही लोरियां सुनाई थीं। और जंगल के बीहड़ पथ ही उनके सोने के लिये सेज बनी थी। इन्हीं कठिनाइयों ने इनके जीवन को सशक्त और परम वीर बना दिया था। इनकी माता के त्यागपूर्ण संस्कार व पिताजी का पावन रक्त इनकी नस-नस में व्याप्त था।

दिल्ली सम्राट जहांगीर ने कई वार अमरसिंह को कुचलने के लिये, अपने आधीन करने के लिये विशाल सेनायें आक्रमण करने हेतु भेजीं किन्तु स्वाधीनता के अनुयायी, वीर राजपूतों के सामने हर वार वुरी तरह मुंह की खानी पड़ी।

अन्त में एक वार जहांगीर ने भारी सेना के साथ अमरसिंह पर हमला कर दिया। जव इस आक्रमण का पता मेवाड़ नरेश को चला तो उन्होंने पूरी तैयारी के साथ मुसलमानों से मोर्चा लेने के लिये एक सशक्त सेना का संगठन किया। चारों ओर सीमान्त प्रान्तों पर सेना को व्यवस्थित रूप से जमा दिया।

राणा में वड़ा जोश था उनमें अपने पिता के कष्टों का वदला लेने की वड़ी उमंग थी। वे युद्ध की तैयारी के सम्वन्ध में, यवनों के दांत खट्टे करने के लिये वडी वड़ी योजनायें वना रहे थे। उस समय इनकी सेना में दो सशक्त वीरों के दल थे। प्रथम चंद्रावत और द्वितीय शक्तावत।

दोनों ही वीर दलों में वड़ा जोश और उमंग थी। दोनों दलों में हिरावल का पद प्राप्त करने के लिये विवाद पैदा हो गया। "हिरावल" का अभिप्राय है कि युद्ध में सवसे आगे रहने वाली सेना तथा सवसे पहले शत्रु पर आक्रमण करने वाले वीर। दोनों दलों में से प्रत्येक यह चाहता था कि प्रथम आक्रमण करने का अवसर उसे मिले। दोनों ही दल के सरदार राणा के पास आये और घटना का वर्णन करने लगे।

"मेवाड़ रक्षक! आपसे छिपा हुआ नहीं कि हमारे पूर्वज कितने वलशाली थे और वीरवर चंड की देश सेवाओं से प्रत्येक राजस्थानी पूर्ण रूप से परिचित है। हम उन्हीं के वंशज (चन्द्रावत) अपनी गौरवमय परम्परा के आधार पर "हिरावल" का पद प्राप्त करना चाहते हैं। मेवाड़ भूमि की तन, मन, धन से रक्षा करना भी हमारा

कर्त्तव्य है। किन्तु शक्तावत सरदार श्रीमान के सेवा में बहुत थोड़े समय से है किस प्रकार उक्त पद प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं ? चन्द्रावत सरदार ने महाराणा से कहा। राजपूतों में कितना जोश, उमंग व देशभक्ति कूट कूट कर भरी थी ! उनमें मातृभूमि के लिए बलिदान होने की कितनी मधुर स्पर्धा थी।

प्रत्युत्तर में शक्तावत सरदार कहने लगे, "मेवाड़ नरेश ! च द्रावत सरदार ने जो कुछ कहा है प्राचीन परम्परा की बात है। प्राचीन समय में चन्द्रावत सरदार अधिक शक्तिशाली थे अतः इस पद के अधिकारी भी थे। किन्तु अब आप भी जानते हैं कि इस युद्ध में शक्ति किसकी प्रबल है ? अतः "हिरोल" के सच्चे अधिकारी शक्तिशाली हैं न कि परम्परा के पुजारी।"

महाराणा दोनों की वीरता व स्पर्धा ने हृदय में बहुत प्रसन्न थे परन्तु अनावश्यक विवाद होने की स्थिति में वो धर्म संकट में भी थे। इस गृह कलह से बचने के लिए तथा यवनों पर भीषण आक्रमण करने के लिए आदेश दिया—

"आप लोग मुगलों के अंतला दुर्ग पर आक्रमण कर दीजिए और दोनों सरदारों में जो पहिले दुर्ग पर अपना विजय का झंडा फहरा देगा वही इस "हिरोल" का रक्षक समझा जायेगा। इस बात पर दोनों ने अपनी अपनी स्वीकृति दे दी।

अंतला दुर्ग मुगल सेना की सीमा का एक बड़ा प्रभावशाली व पूर्ण सुरक्षित सैन्य दुर्ग था। दोनों सरदारों की सेनाओं ने एक साथ अन्तला दुर्ग पर भीषण आक्रमण किया। शक्तावत सरदार व चन्दा-वत सरदार ने अपने अपने यद्ध कौशल के तरीके अपनाये तथा यवन सेना पर भीषण प्रहार करना शुरू किया।

राणा अमरसिंह स्वयं घूम घूम कर युद्ध व्यवस्था का निरीक्षण कर रहे थे तथा राजपूत वीरों को प्रोत्साहित भी कर रहे थे।

शक्तावत सरदार ने सकड़ों यवन सैनिकों को, जो दुर्ग की रक्षा पर तैनात थे, यमलोकपुरी पहुंचा दिया। इसके साथ ही साथ किले के अन्दर प्रवेश पाने के लिए अपने भीमकाय हाथी को विशाल फाटक पर ठल दिया किन्तु किवाड़ पर लगे हुए शूलों से चोट खाकर वापिस लौट आया।

इधर चन्दावत सरदार सीढ़ी द्वारा दुर्ग पर चढ़ने लगा ताकि विजय प्राप्त कर किले पर विजय पताका पहरा सके। परन्तु इसी क्षण दुश्मन की तोप के गोले ने सरदार को नीचे गिरा दिया और आशाओं पर पानी फेर दिया। दूसरे क्षण वे ही उत्साही वीर फिर सीढ़ी की ओर अग्रसर हुये और शीघ्रता से किले पर चढ़ने लगे।

चन्दावत सरदार की मृत्यु से शक्तावत सरदारों का साहस अधिक बढ़ गया और उन्होंने किले के फाटक को तोड़ने का प्रयास जारी रखा। हाथी के बार बार फाटक से व्यथित होकर लौटने से शक्तावत सरदार चिन्तित थे। अन्त में शक्तावत सरदार को एक उपाय सूझा, वह स्वयं किले की फाटक पर चढ़ गया और महावत को हाथी अपने ऊपर ठेलने की आज्ञा दी। हाथी की जोरदार टक्कर से शक्तावत सरदार के टुकड़े टुकड़े हो गये और साथ ही फाटक भी टूट कर गिर पड़ा। शक्तावत सरदार मारे खुशी के किले पर चढ़कर विजय पताका फहराने हेतु शीघ्रता से बढ़ने लगे, परन्तु आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब कि उन्होंने इसके पूर्व ही चन्दावत सरदार की पताका फहरती हुई देखी।

बादशाह जहांगीर राजपूतों के स्पर्धायुक्त युद्ध कौशल को देखकर दंग रह गया। उसके सारे स्वप्नों पर पानी फिरने-सा लगा। राजपूतों की वीरता ने सम्राट के हृदय पर एक अमिट छाप छोड़ दी।

इस वीरता पूर्ण कार्य से प्रसन्न होकर महाराणा अमरसिंह ने दोनों सरदारों की सेनाओं को बधाई दी तथा चन्दावत सरदार को सेना में "हिरोल" का स्थान देकर सम्मानित किया।

महाराणा अमरसिंह ने अपने वीरतापूर्ण कार्यों से अपने पूज्य पिता का सफलता के साथ प्रतिनिधित्व किया।

उदारता, वीरता, दया तथा न्यायपरायणता आदि महान् गुण राणा अमरसिंह में विद्यमान थे, इन समस्त गुणों के होने से ही सेना, सामन्त, इष्ट-मित्र और प्रजाजन देवभाव से अमरसिंह की पूजा करते थे।

धन्य है उन वीर, धीर पुरुषों को-जिन्होंने अपने आत्म गौरव व मातृभूमि की रक्षा हेतु प्राणों की बलि हंसते हंसते दे दी। आज समय, मां भारती से भीख मांग रहा है कि हे मातेश्वरी। "तेरी इस पावन भूमि पर फिर से ऐसे सपूत पैदा कर जो पुनः उजड़े हुये उपवन में नई बहार, नई चटक व नई रंगीन लहर ला सकें। अभी अभी प्राप्त इस स्वतन्त्रता की रक्षा अपने बाहुबल से स्थायी रख सकें और हमारे देश को उन्नति के शिखर पर बैठा सकें।"

६—अमरसिंह राठौर

तलवार के धनी अमरसिंह राठौर को आज कौन नहीं जानता ? इन्होंने अपनी वीरता की धाक मुगल वादशाह पर पूरी तरह से, स्थायी रूप से जमा दी थी । आज भी देश के नवयुवक कलाकार रंग-मंच पर वीर राठौर की याद ताजा कर देते है । यद्यपि वे शाहजहां के दरवारी थे किन्तु स्वाभिमानी व्यक्ति थे अपना अपमान कभी सहन नहीं कर पाते थे । एक वार वादशाह किसी व्यक्ति के वहकावे में आकर भरे दरवार में अमरसिंह को जुर्माना की धमकी दी । वे उस धमकी को सहन न कर सके और निर्भीकता के साथ प्रत्युत्तर दिया कि मेरे जुर्माने की राशि इस तलवार में हैं । मैं इसकी त क्ष्णता से आपका सारा जुर्माना चुका दूंगा ।"

अमरसिंह जोधपुर के राजा गजसिंह के ज्येष्ठ पुत्र थे । ये वड़े पराक्रमी थे इन्होंने अपने पिता के साथ युद्ध में वड़े उत्साह से भाग लिया था और अपने वाहुवल के आधार पर विजय श्री भी प्राप्त की थी । वीर होने के साथ साथ अमरसिंह अत्यन्त क्रोधी स्वभाव के भी थे । इसी कारण इनके पिताजी इनसे अप्रसन्न थे और राजगद्दी पर वैठने का अधिकार भी छीन लिया गया । अन्त में राजगद्दी पर इनके छोटे भाई यशवन्तसिंह को वैठाया ।

ऐसी अपमानित स्थिति में अमरसिंह अपनी जन्म भूमि में नहीं टिके और वहां से चल दिए । इनके साथ कुछ मित्रगण भी थे । मित्रों की सलाह से दिल्ली के सम्राट शाहजहां के यहाँ नौकरी करली । शाहजहां वीर पुरुष को अपने पास पाकर वहुत ही प्रसन्न था । वह

राजपूतों की वीरता से भलीभांति परिचित था विशेषरूप से अमर-सिंह जैसे वीर योद्धा से तो वह अत्यन्त खुश था।

शाहजहां ने प्रसन्न होकर अमरसिंह को अच्छा प्रतिष्ठापूर्ण पद भी दिया। अमरसिंह ने थोड़े ही दिनों में अपने वीरतापूर्ण कार्यों से बादशाह के हृदय पर प्रभाव जमा लिया। उसने बादशाह के अनेक विद्रोहियों का दमन किया तथा उनसे किले भी जीते। शाहजहां उसकी वीरता और विजय से प्रसन्न होकर तीन हजार सिपाहियों का सरदार बनाया और "राव" की उपाधि से विभूषित भी किया। उन्हें नागौर किले की जागीर भी दी।

अमरसिंह की सफलता और बादशाह द्वारा दिए गये सम्मान से शाहजहां के साले सिपहसालार सलावतखां को मन ही मन घोर ईर्ष्या थी। उसने अमरसिंह के विरुद्ध कई बार बादशाह को भड़काने की कौशिश की तथा दरबार में भी ऐसा वातावरण बनाना चाहता था, परन्तु सफल न हो सका। सलावतखां समय की इन्तजार में था। समय सभी को मिलता है, सदुपयोग और दुरुपयोग मनुष्य की बुद्धि और विवेक पर निर्भर है। एक बार अमरसिंह कारणवश १५ दिन तक दरबार में अनुपस्थित रहा। सलावतखां ने उसकी अनुपस्थिति से फायदा उठाया और बादशाह को उसके विरुद्ध भड़काता रहा। बाद-शाह भी अन्त में अपने साले साहब के चक्कर में चढ़ गए। जिस दिन अमरसिंह दरबार में पहुंचे तो शाहजहां ने उन पर जुर्माना करने की धमकी दी। जुर्माने की बात सुनते ही अमरसिंह को क्रोध आ गया, उन्होंने दरबार में तलवार निकाल ली और कड़ककर कहा कि "मेरा सारा जुर्माना इस तलवार में है। मैं इसकी तीक्ष्णता से सारा जुर्माना चुका दूंगा।" और इतना कहकर वहां से चले गये।

बादशाह अमरसिंह के इस व्यवहार से भरे दरबार में अपमा-नित हुए। उन्हें बहुत क्रोध आया तथा रावसाहब को बुलवाया गया। अमरसिंह का क्रोध अब भी शांत न था क्योंकि वे सलावतखां के

कार्यों से परिचित थे। वे क्रोध में आकर दरबार में चल दिये, सलावतखां को दरबार में देखते ही उनकी आंखों से क्रोधाग्नि निकलने लगी। उन्होंने उसी समय सलावतखाँ का सिर धड़ से अलग कर दिया और बादशाह को मारने के लिए कटारी फेंकी। बादशाह अपने बचाव के लिए महल में भग गये। अगर ऐसा न करते तो अवश्य मारे जाते। इसके बाद दरबार में घमासान युद्ध हुआ कई सरदार और अमीर मौत के घाट उतार दिए गए। फौज ने किले के दरवाजे बन्द कर लिये और अमरसिंह को घेरना चाहा किन्तु शेर को बांधना मुश्किल था। वह वीर योद्धा किले की दीवार से घोड़े सहित कूद पड़ा, घोड़ा खाई में गिरकर तुरन्त मर गया किन्तु अमरसिंह सुरक्षित वहां से निकल गये। सम्पूर्ण सेना के सैनिकों के हृदय में भय था वे उनके नाममात्र से ही बहुत घबराते थे।

शाहजहां का हृदय भी अमरसिंह से बहुत भयभीत था और सचमुच में अमरसिंह अपने दुश्मन के लिए बहुत खतरनाक ही नहीं बल्कि मौत रूप में थे। बादशाह फिर भी इस अपमान का बदला लेना चाहता था। उसने दरबार लगा के उसमें उसको पकड़वाने का बीड़ा उठवाया और पकड़कर लाने वाले को पद और इनाम की घोषणा भी की। आश्चर्य की बात तो यह थी कि दरबार में सभी सरदार और अमीर लोग एक दूसरे का मुंह ताकने लगे। किसी का साहस नहीं हुआ जो राठौर को पकड़ने की प्रतिज्ञा करता. अपने आपको मौत के मुंह में झोंकता। अन्त में गद्दार अर्जुन गोरे–जो अमरसिंह का साला था, इस लोभ के चक्कर में आ गया। सत्य है–घर का भेदी लंका ढावै। उसने अमरसिंह को पकड़वाने का बीड़ा उठा लिया।

अर्जुन गोरे ने अपना जाल फैलाना शुरू किया, कई तरकीबें सोचीं। एक दिन निश्चय करके वह अपने बहनोई अमरसिंह के पास नागौर पहुंचा। उसने कहा, "बादशाह तुमसे संधि करना चाहते हैं।

वह पिछले वैर भाव को भूल गये हैं और आपको दरबार में वुलाया है।"

अमरसिंह दिल के साफ थे, उनकी नीयत में गन्दगी नहीं थी। वे अपने साले अर्जुन गोरे की वातों में आ गये और उनके साथ आगरा चल दिये। उन्हें उसके धोखे की कतई कल्पना भी न थी। अर्जुन गोरे यह भली भांति जानता था कि अमरसिंह से लड़कर जीत की आशा रखना केवल हवाई किले वनाना होगा—अतः छल-कपट का ही सहारा लिया। उसने एक उपाय सोचा और अमरसिंह को किले के दूसरे द्वार से ले जाने लगा। उस समय उक्त द्वार वन्द था। द्वार की खिड़की ही केवल अन्दर प्रवेश पाने का सहारा था। द्वार की खिड़की से घुसते हुए अमरसिंह पर अर्जुन गोरे ने पीछे से तलवार का वार करके उसे मार दिया। परन्तु वीरवर अमरसिंह ने मरते मरते भी अर्जुन गोरे पर कटारी फेंकी जिससे उसे अपनी नाक से हाथ धोना पड़ा तथा हमेशा के लिये नकटा हो गया।

वादशाह को जब अर्जुन गोरे के कायरता एवं विश्वासघात से परिपूर्ण कार्य का समाचार मिला तो अत्यन्त दुःख हुआ। वादशाह ने अनुभव किया कि उसने अपने एक वीर को सदा के लिये खो दिया। अर्जुन गोरे के लोभ और धोखे पर क्रोध आया। उन्होंने उसी समय अर्जन गोरे को देश से निकाल दिया और अमरसिंह के भतीजे को ही पद दिया गया।

अमरसिंह राठौर का नाम आज भी राजस्थान के इतिहास में प्रसिद्ध है तथा जब भी नाम आता है गौरव से सिर ऊंचा हो जाता है। आगरे के किले के दरवाजे पर जहां उनकी मृत्यु हुई थी "अमरसिंह द्वार" नाम से आज भी प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त किले से कूदने पर जहां उनका घोड़ा मरा था उसका चिन्ह आज तक वना हुआ है।

आइये पाठकों, ऐसे वीर पुरुषों के प्रति श्रद्धा के पुष्प चढ़ावें।

———

१०—वीरवर दुर्गादास

धनि दुर्गा राठौड़ ! तू दल्यो मुगल दल दाप ।
लखियत मरुथल पै अजौ तुव निज प्यारी छाप ।"

—वियोगी हरि

राठौड़ वीर दुर्गादास कोई बादशाह या महाराजा पद पर आसीन नहीं थे । वे तो मारवाड़ के एक साधारण जागीरदार थे । वे अपनी वीरता, त्याग और कुशलता के बल पर इतिहास में प्रसिद्ध हो गये तथा यवन शासकों पर अमिट छाप छोड़ दी ।

उन दिनों महाराज यशवन्तसिंह मारवाड़ के शासक थे । वीर दुर्गादास इन्हीं महाराजा के कुशल सेनापति थे । महाराज की सेवा में रहकर इन्होंने महत्वपूर्ण कार्य किए जो इतिहास में प्रसिद्ध हैं ।

इस समय दिल्ली के बादशाह औरंगजेब थे । वो महाराजा यशवन्तसिंह और उनके पुत्र को मरवाना चाहते थे । उन्होंने कूटनीति से काम लिया और महाराज को काबुल पर आक्रमण करने के लिए भेज दिया इधर राज दरबार में उनके पुत्र पृथ्वीसिंह को धोखे से मान-सम्मान की आड़ में विषभरी खिलअत पहनाई । इस जहरीले वस्त्र से पृथ्वीसिंह मारे गये । इन समाचारों ने महाराज यशवन्तसिंह को शोक विह्वल कर दिया और पुत्रशोक में मारे गये ।

राजकुमार और महाराज की मृत्यु से दुर्गादास तथा अन्य राठौर साथी अत्यन्त दु:खी हुए । सभी लोग बहुत उदास थे । मारवाड़ की आंखों में आंसू थे । इधर महाराणी भी गर्भवती थी, अत: सती होने में बाधा थी । इस समाचार से वीर सरदारों में आशा का

संचार हुआ. डूबते को तिनके का सहारा मिला। रानी ने पुत्र प्रसव किया। उसका नाम अजीतसिंह रखा गया। घोर अन्धकार में प्रकाश की रेखायें दिखने लगीं। रानी इस समय लाहौर में थी।

राठौर सामन्त, महारानी और उनके नव-जात शिशु के साथ दिल्ली पहुंचे। इन मुसीबत के दिनों में औरंगजेब से अच्छे व्यवहार की आशा थी परन्तु रंगढंग कुछ उल्टे ही निकले। दुर्गादास ने बादशाह से निवेदन किया,–"जहांपनाह, महारानीजी मारवाड़ लौट जाना चाहती हैं, आपकी आज्ञा हो तो पहुंचा दिया जाय।" औरंगजेब ने कहा, "दुर्गादास, मैं राजकुमार अजीतसिंह को अपने पास रखना चाहता हूं, मुझे उससे बहुत प्रेम है। तुम मेरे सुपुर्द करदो। मारवाड़ का शासक तो अब कोई है नहीं। मैं वहां का राज्य आप लोगों को सौंप दूंगा।" राठौर वीर बादशाह की चाल समझ गये, परन्तु वो सच्चे स्वामी भक्त यह सब कब मानने वाले थे। सबने मिलकर सारी परिस्थिति पर विचार किया तथा अन्त में मुकुन्ददास सेपेरे के रूप में राजकुमार अजीतसिंह को सुरक्षित रूप में दिल्ली से लेकर चल दिए।

दुर्गादास ने अपने वीर साथियों को एकत्रित किया और उनसे कहा, "आप सब लोग बादशाह औरंगजेब की कूटनीति से पूरी तरह परिचित हैं, उसके इरादे बिल्कुल नापाक हैं। ऐसी स्थिति में हमारा क्या कर्त्तव्य है, सोचने का विषय है। हमें मारवाड़ के शान की रक्षा करनी है, उसके प्रलोभनों में फंसकर अपने कर्त्तव्य-पथ से विचलित नहीं होना है। यह हमारी कठिन परीक्षा का समय है। मैं प्रतिज्ञा-पूर्वक अपना सर्वस्व जन्मभूमि और स्वामी की रक्षा के लिए अर्पित करता हूं। मुझे पूरा विश्वास है कि आप सब लोग मेरा जी-जान से साथ देंगे।"

महाराज की जय–जयकार और मारवाड़ की जय से सारा वातावरण गूंज उठा। सैनिकों ने अपने उत्साह का प्रदर्शन किया।

सभी ने तन, मन और धन से मारवाड़ की पावन भूमि की सेवा करने की प्रतिज्ञा की।

राजस्थान में पुरुषों की भांति स्त्रियां भी मातृभूमि की विपत्ति अवस्था में सदैव सेवा करने में आगे रही हैं। वीर दुर्गादास ने उनको भी आमन्त्रित किया और उत्साहवर्धक संदेश भी दिया—"माताओं और बहिनों, आज हमारी कठिन परीक्षा का समय आ गया है। आपको भी इसके लिये तयार रहना है। यद्यपि आपकी रक्षा का भार हमारे पर है लेकिन इस कठिन परिस्थिति में अगर हम आपकी रक्षा न कर सके तो राठौड़ वंश के गौरव की रक्षा का भार आपके ऊपर ही आयेगा। मुझे विश्वास है कि आप राठौड़ वंश के पवित्र वंश पर कलंक न लगने देंगी।" वीर स्त्रियों ने दृढ़ता के उत्तर दिया,– "सेना-पतिजी आप निश्चिन्त होकर मारवाड़ की रक्षा में, सैन्य संगठन में लगे रहिये। हमारी तरफ से विश्वास दिलाती हैं कि हम कभी अपने कर्त्तव्य-पथ से विचलित न होंगी।"

उधर बादशाह औरंगजेब दुर्गादास और उनके साथियों पर क्रुद्ध हो रहा था क्योंकि उन्होंने बादशाह की बात न मानी। इस-लिए उसने एक बड़ी सेना मारवाड़ पर आक्रमण करने के लिए भेजी। मुगल सेना ने मारवाड़ की भूमि में प्रवेश किया और वीर राठौड़ों पर आक्रमण करने की तैयारियां करने लगी। इधर वीर दुर्गादास को यवन सेना के पास आने का संदेश मिलते ही भूखे बाघ को भांति दुश्मन को सेना पर टूट पड़े। तलवारें बिजली की भांति चमका उठीं। वीर राजपूतों ने मुसलमानों को गाजर-मूली की तरह काटना शुरू किया। कई यवन वीरों को धराशायी कर दिया। मुगल-सेना में हल चल मच गई। मुट्ठीभर राजपूतों ने भयंकर युद्ध किया। वे तूफान के भांति यवन सना को चीर कर आगे बढ़ रहे थ। देखते ही, देखते उन्होंने कई मुगल सैनिकों को मौत के घाट उतार दिया और सेना को चीर कर पार हो गये। राजपूतों की छोटी सी सेना ने अपार

मुगल सेना के दाँत खट्टे किये। इस युद्ध में मुगलों को काफी क्षति हुई। राठौड़ों के भी कुछ वीर काम आये।

औरंगजेब को जब यह समाचार मालूम हुए तो क्रोध का ठिकाना न रहा। उसने विशाल सेना का संगठन किया और खुद सेना लेकर मारवाड़ पहुंचा। बादशाह की इस अपार सेना का मुकाबला राजपूत वीर नहीं कर सके। मुगलों का मारवाड़ पर अधिकार हो गया। उसने जनता को लूटा, मन्दिरों को तोड़ा तथा जगह-जगह आग लगा दी। लोगों पर मनमाना अत्याचार किया गया। हिन्दुओं पर जजिया कर लगाया गया। इस तरह चारों तरफ नादिरशाही का नंगा नाच शुरू कर दिया।

उधर दुर्गादास मेवाड़ के महाराणा की सेवामें पहुंचे और स्थिति से परिचित करवाया। राजकुमार अजीतसिंह को भी महाराणा के सुपुर्द कर दिया। मेवाड़ के महाराणा राजसिंह बहुत वीर और पराक्रमी महाराणा थे। दुर्गादास अपने मुट्ठी भर साथियों के साथ यवन सेना से जूझ सकते थे परन्तु योंही मरना भी तो ठीक नहीं। अजीतसिंह को गद्दी पर बैठाने का लक्ष्य भी पूरा नहीं हो पाता। अतः विवेक से काम लिया—वीर दुर्गादास ने। राजदरबार में महाराणा ने दुर्गादास से मारवाड़ की स्पष्ट स्थिति का परिचय मांगा। उन्होंने कहा, "महाराणाजी मारवाड़ की स्थिति इस समय बहुत ही दयनीय हैं। चारो ओर आपत्ति के बादल मंडरा रहे हैं। लोगों में हाहाकार मचा हुआ है। बादशाह ने विशाल सेना के साथ मारवाड़ भूमि पर भीषण आक्रमण किया है जिसका मुकाबला करना भी कठिन है। गांव जलाये जा रहे हैं, प्रजा के साथ अनेक अत्याचार किये जा रहे हैं। कुमार अजीतसिंहजी को अरावली की गुफाओं में छिपा कर अब बड़ी कठिनाई से यहां ला पाये हैं। मैं चाहता हूं कि राठौड़ों का संगठन करूं। और शत्रुओं का मुकाबला करते हुए प्राणों की बाजी लगादूं। लेकिन राठौड़ों में आज उत्साह की कमी है। वे अस्त-व्यस्त

हैं तथा घबराये हुए हैं। आप स्वतन्त्रता के रक्षक व उसके महान पुजारी हैं। मुझे आशा है आप इस पवित्र कार्य में मेरी सहायता करेंगे।"

महाराणा दुर्गादास के हृदय की व्यथा को समझ गये और बोले—"राठौड़ वीर, तुम्हारा देश-प्रेम अनूठा है, प्रशंसनीय है। तुम्हारे जैसे देश भक्तों को देखकर जन्मभूमि भी आज फूली नहीं समा रही है। मैं तुम्हारी सहायता अवश्य करूंगा।"

महाराणा के आश्वासन भरे वचनों से दुर्गादास बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने मेवाड़ और मारवाड़ के राजपूतों का सैन्य संगठन भी प्रारम्भ किया। उधर बादशाह औरंगजेब को जब राजकुमार के मेवाड़ पहुंचने के संदेश मिले तो महाराणा को पत्र लिखा कि वे राजकुमार को उन्हें सौंप दे। अगर ऐसा नहीं किया गया तो औरंगजेब से मुकाबला करना पड़ेगा। महाराणा बादशाह को धमकी में नहीं आये और स्पष्ट रूप से लिख दिया कि वे राजकुमार को किसी भी कीमत पर नहीं दे सकते।

औरंगजेब की विशाल सेना ने मेवाड़ की ओर कूंच किया। इधर दुर्गादास के नेतृत्व में राठौड़ राजपूतों और शीशोदिया राजपूतों का सम्मिलित संगठन हुआ। सभी सामन्तगण एकत्रित हुये। राजकुमार भीमसिंह और वीर दुर्गादास ने सैनिकों को एकत्रित किया। वीर दुर्गादास ने सैनिकों से कहा "मेवाड़ी सिंहों और राठौड़ वीरों! आपको मालूम ही है कि यवन सेना हमारी स्वतन्त्रता का अपहरण करने बड़ी तैयारी क साथ आई है। मुगल बादशाह हमारी स्वतन्त्रता छीनना चाहता है, हम बहादुरों को गुलाम बनाना चाहता है। वह हमको, हमारे धर्म और संस्कृत से अलग करना चाहता है। साथियों! शरीर में खून की एक बूंद रहने तक हम यवनों का डटकर मुकाबला करेंगे। युद्ध भूमि में यमराज की भांति उनके जानी दुश्मन बन जायेंगे। हम जीते जी परतंत्र नहीं हो सकते। मुझे विश्वास है कि

आप लोग स्वामी भक्ति तथा देश भक्ति का परिचय दगे तथा यवनों को नाकों चने चबा देंगे।" जय मारवाड़ और जय मेवाड़ के साथ विसर्जन हुआ। राठौड़ वीर दुर्गादास के इन शब्दों से सेना में उत्साह और जोश की लहर फैल गई।

देवारी के घाट के पास शाही सेना से भीषण युद्ध हुआ। वीर राजपूतों ने विवेक से काम लिया और उदयपुर को वीरान बनाकर पर्वतों में आगये। यहीं पर युद्ध को तैयारियां की गई। मुगल सेना को पहाड़ी युद्ध का बिल्कुल अनुभव नहीं था। अतः जब भी वे इधर उधर बढ़ी तो उनको मुंह की खानी पड़ी। मुगल सेना की बड़ी बुरी हालत हो रही थी। वीर दुर्गादास और कुमार भीमसिंह की युद्ध कुशलता के सामने मुगल सेना ने घुटने टेक दिये। चित्तौड़, बदनोर और देसूरी के युद्ध में राजपूत वीरों ने जबरदस्त रण कौशल दिखाया। इन तीनों युद्धों की पराजय से औरंगजेब की हिम्मत टूटने लगी और वह सन्धि का प्रयत्न करने लगा।

दुर्गादास वीर तो थे ही, राजनीतिज्ञ भी थे। उन्होंने मराठा, सिक्ख और राजपूत-तीनों जाति के बहादुरों का एकीकरण का प्रयास किया। अगर ऐसा हो जाता तो इतिहास का रूप ही दूसरा होता। वीर दुर्गादास की कीर्ति चारों ओर फैल गई। बड़े बड़े राजा महाराजा और सामन्त उनकी देशभक्ति, वीरता और स्वामी भक्ति से प्रभावित होकर उनका सम्मान करने लगे थे।

११–वीर जुंझारसिंह

राठौड़-सेनापति वीर जुंझारसिंह प्रख्यात वीर दुर्गादास के योग्य पुत्र थे। पिता के स्थान की पूर्ति उचित ढंग से तथा वीरोचित कार्यों से की। आप भी अपने पिता की भांति दृढ़प्रतिज्ञ, स्वामीभक्त और परम देशभक्त थे। वीर पिता के सभी गुण इनमें विद्यमान थे।

इधर मुगल वादशाह ने मारवाड़ को पद दलित करने के लिए एक भीषण व विशाल सेना भेजी। मुगल मारवाड़ का उल्लास नहीं देखना चाहते थे। उन्होंने मारवाड़ को लूटना शुरू किया। अन्न की की राशियाँ देखते देखते लूट ली गई। गांव जला डाले गये। मार्ग में चलने फिरने वाले स्त्री, पुरुष और वालक को अकारण काट दिया गया। एक वार फिर मारवाड़ पर आतंक और भय छा गया। मारवाड़ में आई हुई वहार को यवनों ने जलकर जला दिया।

वीर जुंझारसिंह कुशल सैन्य संचालक थे। मुगलों से मुकावला करने के लिए सेना का संगठन किया गया।

जोधपुर के दक्षिण ओर के विस्तृत सैन्य मैदान में कई राठौड़ वीर घोड़े पर सवार, मूंछें मरोड़े, रण वांकुरे सिर पर टेढ़ा साफा वांधे हुये तथा हाथों में नंगी तलवार लिये, पंक्ति वद्ध क्रोध से लाल-लाल आंखें किये खड़े हुए थे। ये स्वतन्त्रता के सच्चे सिपाही अपने अपमान का वदला लेने के लिए तथा वृद्ध, अवला और वालक की रक्षार्थ उत्साह पूर्वक यवनों को दो–दो हाथ दिखाने को तैयार थे। प्रत्येक के नेत्रों से क्रोधाग्नि भड़क रही थी। मातृभूमि के लिये मर मिटने के इरादे थे। ये सव अपने सेना नायक के आदेश की प्रतीक्षा में थे। इन रण वांकुरे नव-जवानों का सेना-नायक एक नवयुवक

राठौड़ था। उसकी आयु तेईस-चौबीस वर्ष के करीब थी। वह घोड़े पर सवार बिजली की भांति सैन्य निरीक्षण कर रहा था। उसका सुन्दर गौर वर्ण, गठीला शरीर और उस पर स्वर्ण कवच व्यक्तित्व को अधिक आकर्षक कर रहा था।

इधर सामने ही अपार मुगल सेना थी। जिनको मारवाड़ के वीरों से, उनकी भूमि से, उनकी खुशियों से ईर्ष्या थी, जलन थी। उनकी सेना में तोपें भी थी जो पुर्तगीज गोलंदाजों के हाथ में थी। कई हाथी पहाड़ों के भांति अडिग खड़े थे। घुड़ सवार और पैदल सेना भी आज पावन राजपूती सेना से मरकर पाक होना चाहती थी।

नव युवक राठौड़ सेनापति जुझारसिंह सेना का निरीक्षण करने के बाद ऊंचे स्थान पर खड़ा हो गया और कहने लगा—"वीर राठौरों! बहादुरों! हमारी खुशियों को न चाहने वाले मुगलों ने हम पर आज अकारण ही हमला किया है। वे अपनी शक्ति में अंधे हो रहे हैं। उन्होंने हमारी जनता पर मनमाना अत्याचार किया है, लूटा है तथा आग लगाई है। उनका यह अमानवीय व्यवहार दण्ड का अधिकारी है। हमें उनका उचित प्रत्युत्तर देना ताकि वे अपनी सीमा में ही रह सकें. उसका उल्लंघन न करने पायें। साथियों! तलवार हमारे हाथ में है ऐसा न हो कि एक भी बलि का बकरा बचकर चला जाय। वीरों, वे बहुत हैं और हम बहुत कम हैं परन्तु हम सिंह हैं। वो हैं सियार समूह। मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि आज शत्रु सेना के प्रधान सेनापति उनके झंडे सहित कुचलूंगा। कौन मेरे साथ आगे बढ़ता है। वह वीर अपनी तलवार खींचकर आगे आये।

सहस्त्रों तलवारें आकाश में बिजली की भांति चमक उठीं, झनझना उठीं। युवक सेनापति ने युद्ध का बिगुल बजाया। क्षणभर में दोनों सेनायें भिड़ गईं। तोपें आग उगलने लगीं। तलवारें खन-खनाने लगीं। घाव खा-खाकर कई योद्धा चीत्कार के साथ धरती पर गिरने लगे।

वीर जंभारसिंह ने शत्रु सेना के व्यूह का भेदन किया और भीषण मारकाट मचाता हुआ अपने वीर साथियों के साथ आगे बढ़ने लगा। मुगल सैनिक वीर जुंभार को देखते ही घबराने लगे। वीर युवक अपने लक्ष्य को पूरा करने के लिये मुगलों के बहुमूल्य भंडे के पास और उनके प्रधान सेनापति मुजफ्फरबेग के सामने आ पहुंचा। उसने दुश्मन को ललकारा तथा एक ही वार में महावत को मार गिराया तथा दूसरी उछाल में भंडा उसके हाथ में था। वह कीमती रेशम का था, उस पर मोतियों की भालर लटक रही थी। वह विजय के उल्लास में खिलखिलाकर हस पड़ा।

मुजफ्फरबेग क्रोध से थर-थर कांप रहा था। उसने अपनी सेना को ललकार कर कहा—देखो बहादुरों दुश्मन हाथ से नहीं चला जावे। पकड़ो, इसके टुकड़े-टुकड़े कर दो"। वीर युवक दुश्मनों से घिर गया था। चारों ओर शत्रु ही शत्रु थे। वह अपने कुछ ही साथियों के साथ यम की भांति युद्ध कर रहा था। प्रत्येक राठौर दो-दो तलवारों से एक साथ युद्ध कर रहा था। एक बार अवसर पाकर वीर युवक ने मुजफ्फरबेग पर भाले का भीषण व अचूक वार किया। बेग न संभल सका और क्षणभर में ही हाथी पर से भूमता हुआ गिर पड़ा। दोनों शत्रु गुथ गये। युवक के शरीर पर अनेक घाव थे, शोणित बह रहा था।

सेनापति के गिरते ही मुगल—सेना के पैर उखड़ गये। इस सुअवसर पर राजपूत वीरों ने यवनों को गाजर मूली की तरह काटना प्रारम्भ किया। तलवारों की भंनभनाहट से, घोड़ों की हिनहिनाहट से, तोपों के गर्जन से व मरने वालों की चीत्कार से सारा वातावरण गूंज उठा।

वीर जुंभारसिंह भूमि पर लेटे-लेटे ही अपने वीर योद्धाओं को जोरों से प्रोत्साहित कर रहे थे तथा चिल्ला कर कह रहे थे—"मारवाड़ की जय! रण बांका राठौरों की जय"। राजपूतों में अपार जोश था, यवनों को यमलोकपुरी पहुचाँने की उमंग थी।

राव भगवानदास व अन्य वीर सामन्त वहां आ पहुंचे। रावसा. ने वीर युवक के रक्त से लथपथ शरीर को दोनों हाथों से सहलाया और कहा – वीर, तुम्हारी मां धन्य है, मारवाड़ को तुम्हारे पर गर्व है, उसकी लाज तुमने रखी। परन्तु इस अल्प आयु में तुम वीर-गति प्राप्त हुए। अभी तो विवाह की मेंहदी भी हाथ से नहीं छुड़ी है।"

वीर युवक ने गंभीरता के साथ कहा—"राव सा० (मुजफ्फर बग की ओर इशारा करते हुए) इस गीदड को बांध लो। इसे और इस झंडे को भी महाराज के चरणों में अर्पित कर देना और निवेदन करना कि यह सब मरे हुए आदमी ने जीता है।" मुखमंडल पर भीना मुस्कुराहट फैल गई—"जय मारवाड़" के साथ वीर मां की गोद में सो गया। भीषण युद्ध जारी था। राजपूतों का पलड़ा भारी................।

वीर सरदार चूड़ावत

मेवाड़ के महाराणा राजसिंह के वीर सेनापति चूड़ावत की वीरता से कौन परिचित नहीं। उनका त्याग, बलिदान और वीरता-भरी कहानी राजस्थान में विख्यात है। उन्होंने अपने जीवन में दूसरों की सेवा, सहायता व बलिदान को अपने सुखों की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण समझा। वे हमेशा कांटों के मार्ग पर चलने को तत्पर रहते थे। दु:खों से आलिंगन करने में आनन्द समझते थे।

इस समय दिल्ली का बादशाह आलमगीर औरंगजेब था। वह अपनी शक्ति के नशे में उचित या अनुचित कार्य का कभी चिन्तन नहीं करता था। परन्तु उसके घमण्ड को चूर राजपूत वीर ही अपनी तलवार के बल पर किया करते थे। जब बादशाह ने रूपनगर की राजकुमारी के सौन्दर्य के बारे में सुना तो उससे विवाह करने का निश्चय किया। इसके लिये उसने एक विशाल सेना लेकर रूपनगर की ओर चल दिया।

इधर रूपनगर में साधारण सोलंकी राजा राज करते थे। उनके पास इतनी शक्ति नहीं थी कि वे बादशाह का मुकाबला कर पाते। राजा ने राज-दरबारियों से परामर्श किया। सभी के विचारा-नुसार मेवाड़ के महाराणा राजसिंह से सहायता प्राप्त करने का तथा उनसे ही अपनी राजकुमारी चंचल के विवाह के प्रस्ताव का सुझाव भी दिया। सोलंकी राजा ने इस विषय में अपनी पुत्री की भी स्वीकृति ले ली। राजकुमारी अपने प्राणों की बलि देना अच्छा सम-झती थी चूंकि वह मुगल बादशाह के स्पर्श को घोर पाप का प्रतीक व अपनी प्रतिष्ठा के विपरीत समझती थी। इसके साथ ही साथ राणाजी से विवाह करने में अपना गौरव भी समझती थी।

सुन्दर राजकुमारी का जीवन बहुत पावन था। वह अपना नियमित धार्मिक जीवन व्यतीत करती थी। उसकी नियमित प्रार्थना व धार्मिक पुस्तकों के पठन ने प्रबल आत्मबल पैदा कर दिया था। उसने राणाजी की सेवामें एक विनम्र प्रार्थना-पत्र रक्षा व विवाह हेतु प्रेषित किया।

मेवाड़ के राणा केसरी अपने वीर दरबारियों के साथ बैठे हुए थे। उन्हें उसी समय रूपनगर के एक दूत ने आकर कुछ पत्र संभलाये। राणा ने उन पत्रों को पढ़ा तत्पश्चात राणाजी ने सरदार चूड़ावत के हाथों वे पत्र दिये और सबके सम्मुख पढ़ने का भी आदेश दिया। चूड़ावत ने पत्रों को पढ़ कर सुनाया।

इन पत्रों को पढ़कर चूड़ावत बोले कि "महाराणा साहब इसमें विचार करना क्या है? इन पत्रों को पढ़ कर आप किस चिन्ता में डूब गये? एक राजपूत बाला आपको हृदयेश्वर बना चुकी है, क्या आप उनसे विवाह न करेंगे और उसे मलेच्छ के हाथों पकड़वा देंगे? क्या संसार में क्षात्र धर्म का विनाश होने वाला है? क्या शरणागत वीर राजपूत स्त्री को आत्माघात का अवसर देंगे? क्या मेवाड़ की पावन परम्परा को ठुकरा देंगे?" तब महाराणा ने कहा—"वीर चूड़ावत! तुम सत्य कह रहे हो, परन्तु इस कदम से बादशाह औरंगजेब से दुश्मनी हो जायगी। हमें राज्य का विस्तार करना है इसे खोना नहीं। परन्तु जब सभी राज दरबारियों से इस विषय में परामर्श लिया गया तो सभी का प्रत्युत्तर सरदार चूड़ावत के पक्ष में था।

अन्त में राणा ने सेना का सशक्त संगठन किया। रूपनगर की राजकुमारी से विवाह करने हेतु प्रस्थान कर दिया।

इधर वीर सरदार चूड़ावत का विवाह अभी अभी हुआ था। उसके हाथों में मेंहदी की लालिमा हाथों की शोभा बढ़ा रही थी। उसे अब अपनी नवोढ़ा पत्नी की गोरी गोरी कलाइयों के स्थान पर

तलवार पकड़नी होगी, मुगलों से डटकर लोहा लेना होगा। राज-महल के विलास और आनन्द को त्यागना होगा। वह अपने महलों में नवोढ़ा पत्नी हाड़ा रानी के पास गया। इन्हीं विचारों के उतार-चढ़ाव में उसका (चूड़ावत) मुख-मण्डल कुछ उदास-सा था। रानी मन के भावों को पहचान गई, उसने अपने पतिदेव से उदास होने का कारण पूछा। वीर सरदार चूड़ावत ने बताया कि कल ही उसे औरंग-जेब की सेना से मुकाबला करना है और महाराणा रूपनगर की राजकुमारी की रक्षा के लिए उधर ही प्रस्थान कर चुके हैं। युद्ध भीषण होगा। अब मिलना होगा या नहीं, कुछ कहा नहीं जा सकता। वीर पत्नी हाड़ा रानी ने बहुत ही विवेक से वीरता पूर्ण जबाब दिया, "प्राणनाथ, आपका और मेरा सम्बन्ध जन्म-जन्म का है। हम कभी अलग नहीं हो सकते। आप अपने कर्तव्य का पालन कर क्षात्रधर्म का गौरव बढ़ाइये। मैं आपके विजय की मंगल कामना करती हूं।"

वीर सरदार चूड़ावत अपने चुने हुए वीरों के साथ औरंगजेब का दर्प दमन करने के लिए आगे बढ़े, परन्तु अपनी रानी की याद ने उन्हें फिर विह्वल कर दिया। उन्होंने अपने एक सरदार को रानी से अन्तिम निशानी लेने को कहा। रानी सब समझ गई और उसने अपना सिर काटकर सरदार के हाथों में रख दिया। चूड़ावत इस भेंट को पाकर उन्मत्त हो उठा। और औरंगजेब की सेना को गाजर-मूली की तरह काटने लगा। यवनों के छक्के छूट गए। यवन सेना पराजित होने लगी।

उधर राणा राजसिंह रूपनगर की राजकुमारी को व्याह लाये। उधर विजय की बधाइयां बजने लगी। मुगल सेना पराजित होकर लौट पड़ी। इधर वधुओं ने मगल कलश सजाए, आरतियां भी उतारी। चारों ओर खुशी की लहर दौड़ पड़ी। विवाह और विजय का पावन संगम हुआ।

सरदार चूड़ावत के हृदय में अपनी नवोढ़ा पत्नी का अनुपम बलिदान उसे आनन्दित एव गौरवान्वित कर रहा था। अब यह रहस्य सबके सामने प्रकट हुआ तो सभी ने एक स्वर से सरदार चूड़ावत के त्याग की प्रशंसा की तथा "धन्य हाड़ा रानी, धन्य हाड़ा रानी" से वातावरण गूंज उठा—मंगलमय हो गया ...

राणा ने वीर सरदार चूड़ावत की पीठ थपथपाई और वीरता की बहुत प्रशंसा की। उन्हें बधाई दी कि सौभाग्य का विषय है कि तुम्हें दैवीय वीर पत्नी मिली।

———